सखाराम नेमचंद ग्रंथमाला

देशभूषण कुलभूषण चरित्र.

गो. बा. बीडकर.

— प्रकाशक —

रावजी सखाराम दोशी, सोलापूर.

प्रथमावृत्ति १००० | १९३७. | मूल्य आठ आने.

लेखकका हृद्गत

सज्जनवृंद,

आज मेरी इस अल्पकृतिको आप महानुभावोंके सामने रखनेका महान् सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। कतिपय दिनसे मेरी यह तीव्र अभिलाषा थी कि जिनके कृपाप्रसादसे व शुभाशिर्वादसे मुझे अल्पशिक्षणका लाभ हुआ व जिस स्थानपर मैंने मेरे बाल-पनकी विद्यार्थी अवस्था बिताई उस सिद्धक्षेत्रस्थ '**श्री कुलभूषण देशभूषण**, मुनिचरणयुग का मेरे दिलमे नितांत भक्तिभाव होनेसे उनका चरित्र गद्यपद्यरूपमे आपके सामने रखूं। उसमे श्रीमत्पूज्य धर्मवीर रावजी सखाराम दोशीजी सोलापुरवालो की प्रेरणा व उत्तेजनसे वह अधिकतर द्विगुणित हुई। तस्मात् मेरी मातृभाषा मराठी होते हुए भी मेरे सामर्थ्यके बाहर यह बडा कृत्य छोटीसी अवस्थामें प्रकाशित करनेका मैंने अपूर्व साहस किया है।

हिंदीमें चारित्र क्यों ?

इधर दक्षिण महाराष्ट्र, वऱ्हाड, नागपुर आदि स्थानोंमे सुप्रसिद्ध कीर्तनकार श्री. तात्यासाहेब केशव चोपडे को आबाल

प्रत्र-हर एक जन व्यक्ति जानता है । दक्षिणप्रांतमें कीर्तनकी भारी प्रथा है । जैन जातिमें इस कलाके आद्य आधुनिक प्रवर्तक श्री. तात्यासाहेब चोपडे ही हैं । जो इसमें पूर्ण पारंगत होनेसे जैन समाजमें ही नहीं किंतु हिंदुसमाजमें भी प्रसिद्ध हुए हैं । मुख्यतया पद्मपुराणके के साथ साथ उनके चरित्रका आधार लेकर यह हिंदी आख्यान तैयार किया है । गद्यपद्यस्वरूपमें वंदनीय महात्माओंका उपदेश मिश्रित कीर्तन—गुणगान गाना अथवा उसकी रचना करना इसको आख्यान कहते हैं । सर्व साधारण जनताको गहन धार्मिक विषय समझमें नहीं आता, न उसको गद्यमय प्रवचनमें दिल लगता । अतः संगीतके साथ कथास्वरूपसे सुगमतापूर्वक उपदेश देनेवाले को कीर्तनकार कहते हैं । यह अपने संगीत, विनोद व हावभावा-दिकसे लोगोंका मनोरंजन कर और व्यावहारिक दृष्टांतपर दृष्टांत देकर उनके अंतःकरण में धर्मतत्वका प्रकाश डालता है । अस्ख-लित वक्तृत्व, भाषाप्रभुत्व, विनोद, संगीतका ज्ञान, विद्वत्ता व शुद्धाचरण इत्यादि सद्गुण कीर्तनकार में होना चाहिए । इसके विना जनतापर ठीक प्रभाव नहीं पडता ।

उत्तर हिंदुस्थानमें कीर्तन का रिवाज बिलकुल नही है । इसलिए उधरकी जनता इस कलासे अनभिज्ञ है । फिल हाल श्री० पू० दोशीजी लोगोंको केवल उपदेश देनेके उच्च हेतुसे निरीच्छ व निःस्पृह भावनापूर्वक कीर्तन करते हैं । उनके कीर्तनमें जादह विनोद नहीं है लेकिन नितांत निर्मल धर्मश्रद्धा व शुद्धाचरण से लोगोंके दिलपर उनके कीर्तन का अच्छा प्रभाव पडता है । प्रारं-

भमे कुछ दिन उन्होंने मराठी भाषामें कीर्तन किए, बाद उंसे में जब यशस्विता मालूम होने लगी, तब उत्तरीय प्रांतमें कीर्तन करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। किंतु वह प्रांत मराठी भाषा से पूर्ण अपरिचित होनेसे हिंदी में आख्यान होना उनको अत्यं-तावश्यक मालुम होने लगा। अर्थात् उन्होंने मुझे आज्ञा दी, जो शिरोधार्य समझकर मैंने अल्पबुद्धीसे टूटे फूटे शब्दोमे इसकी रचना की है।

इसके अलावा मैंने दो चार अख्यानोंके सिर्फ पद्य बना दिये है। श्री. दोशीजी विद्वान् व हिंदीभाषाके अच्छे जानकार होनेसे स्वयं गद्यमय हिंदीमें प्रवचन करते है। प्रात:स्मरणीय महातपो-निधि श्रीमत्परमपूज्य आचार्य श्रीशांतिसागरजी महाराज उत्तर प्रांतमे विहार करते है जिनके दर्शनको श्री. दोशीजी प्रतिवर्ष जाते रहते है। वहां और अन्य स्थानपर उनका कीर्तन होता रहता है। अर्थात् उन स्थानोंके बहुतसे लोकोंको इस कलाका ज्ञान हो जानेसे उसमें रुचि मालूम होने लगी। अत: गद्यपद्यमय पुस्तकरूपसे आख्यान प्रसिद्ध किया जाय तो बहुतसे रसिकजन इससे लाभ उठावेंगे, व इस कलाका अधिकतर प्रचार हो जायगा इस शुद्ध भावनासे भी यह आख्यान लिखा गया है।

कथासार.

चतुर्थकालीन २० वे तीर्थंकर श्रीमुनिसुव्रतनाथजी के तीर्थमे, सिद्धार्थनगरीनिवासी निजप्रजाका कल्याण करनेवाले

यथार्थनाम क्षेमंकर महाराजाकी विमला राणीसे चद्रसूर्यसमान ' कुलभूषण व देशभूषण ' नामके दो पुत्ररत्न उत्पन्न हुए। उन्होने बालपनसे तारुण्यावस्थातक प्रसिद्ध गुरुकुलमे विद्याभ्यास किया व सकल कलामे पूर्ण पारगत होकर वह अपने जन्म-भूमीको आये। नागरिकोका आगतस्वागत स्वीकारते हुए उन्होने शहरमे प्रवेश किया। अन्तमे राजमहलके छज्जेपर खडी हुई पीतवस्त्रधारी, मदनकी रतिसमान कुमारी कमलावती को देखते ही दोनो सहोदर उसपर आशक्त हुए। सचमुचमे ' कुमारी अपनी बहिन है ' यह दोनोको भी मालूम न था। तस्मात् उसके प्राप्त्यर्थ परस्परका प्राणहरण करनेके लिये तुमुल युद्ध करने लगे। आखिर मंत्रीजीसे सत्य प्रगट होनेपर मदन को धिःकारते हुए उनको इस-क्षणभंगुर ससारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। इसालिये विवाहादिक प्रापचिक पाशसे दूर व राज्यवैभवका तृणवत् त्यागकर, अनादिकालसे ससारी जीवोके पीछे लगे हुए जनन मरणका बेडा कायम तोडनेके लिये उन्होने जिनदीक्षा धारण की, और निजा-त्मबल वृद्धिगत करके दुष्ट कर्माष्टकको नष्ट करने के वास्ते कुंथल-गिरिपर घोर तपश्चरण किया। पाच छह भवके वैरका केवल बदला लेनेके नीच हेतुसे अग्निप्रभाभिध दुष्ट राक्षसने उसी स्थानपर उग्ररूप धारण कर इनको मनसोक्त घोर उपसर्ग दिया। कर्मधर्मसंयोगसे अपने पूज्य पिताजीके वचनपूर्तीके उच्च हेतुसे अपनी प्यारी प्रणयिनी सीता सती, व कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण के साथ सख्त चौदह वर्षतक वनवासमें दिन बितानेवाला अयोध्या

निवासियोका मनहारा, राजा दशरथ का प्यारा, कौशल्याकी जान व भरतका पंचप्राण वीर रामचंद्र निजजन्मभूमीको छोडनेके पश्चात् दुष्टोका संहार करता हुआ घूमते घूमते मुनि-उपसर्गकी वार्ता सुनते ही वहां विद्युल्लतावत् दौडता आया और अग्निप्रभ राक्षसको स्वपराक्रमके तेजसे दूर भगाया व आत्मध्यानमग्न बंधुद्वयका संकटनिवारण किया। उपसर्ग दूर होनेके बाद घातिकर्मोंका नाश होनेसे केवलज्ञान हुआ, व अंतमें शेष अघातियोंका उच्छेद कर निर्वाणपद प्राप्त किया।

हमारे विद्यादानदाता, श्रीदेशभूषण कुलभूषण ब्रह्मचर्याश्रमके संस्थापक व संचालक श्रीमत्पूज्य गुरुवर्य जिनसेवक ब्र. पार्श्वसागरजी महाराज के करकमलोमे यह मेरी अल्पकृति कृतज्ञ भावनासे सादर समर्पित की है।

आपका चरित्र परिचय.

आप अपनी जन्मभूमि, विरधा [स्टे. तालवेहट जि. झांशी] से सं. १९६० में इस पवित्र क्षेत्रपर गृहस्थी भेषमे आये। आपका (गृहस्थावस्थाका) नाम नदनलाल, माताका मथुराबाई व पिताजीका रामप्रसाद था। आप घरके मालदार व साहुकार थे इसलिये आप अपने जन्मभूमीके सघई थे। बालपनमे आपको पिताजीने घरमें ही खास तौरसे धार्मिक शिक्षण दिया तस्मात् बालपनसे ही आपकी धर्मकी तरफ प्रवृत्ति हुई। सोलह वर्षमें

आप का व्याह हुआ व बाद सोलह वर्ष प्रापचिकसुख का अनुभव लिया। इतनी अवधीमे आपको एक पुत्र हुआ (लेकिन दुर्दैवसे अब वह कालवश हुआ सुननेमे आता है) कुछ कारणवश आप को संसार से उदासीनता प्राप्त होनेमे आप घर छोडकर जयपुर गये जहां आपने स्व. पं. चिमनलाल गोधाके पास कुछ दिन थोडा धार्मिक अभ्यास किया। वहासे अपने कनिष्ठ भ्राता स्व. हजारीलालजीको (जो आपको आश्रमके सचालनमे ऑनररीतोरसे तनमनसे योग देते थे) साथ लेकर यहा आये और कर्नाटकमे जाकर श्रीमद्गुरु चद्रकीर्ति मुनिमहाराज के पाससे ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की। कुछ दिन मुनि महाराजके पास रहकर फिर वापिस लोटकर यहा आये।

आपमें शिल्पकलाका प्रशंसनीय नैसर्गिक ज्ञान है। आपने एक चावलपर णमोकार मंत्र व एक डेढ इचके प्लेटपर दर्शनपाठ लिखा है। आपने लकडी का समवशरण भी तैयार किया है जो देखने लायक है। आपकी कला इधर प्रसिद्द हुई है।

निझाम रियासत की जैनजनता अज्ञान व दारिद्र्यसे पीडित है। इनमे धार्मिक ज्ञान न होनेसे गहरा मिथ्यात्व भरा हुआ है। आपने इस रियासत मे घूम घूम कर बहोत कुछ लोकोंकी मिथ्यात्व से श्रद्धा हटाई और उनके घरमें से कुदेव देवियों को हटवाया।

इधर की जैन समाजमें इसप्रकार करुणाजनक अज्ञान देखकर आपने ज्ञानदान का साधन ब्रह्मचर्याश्रमके संचालनरूपमें समाजसेवा करने का निश्चय किया । उसमें यहांके प्रबंधकर्ताओं व अतराफके उदार प्रमुख जैन महाशयों का उत्तेजन मिलते ही वह द्विगुणित हुआ ।

' ज्ञानेन पुंसा सकलार्थसिद्धिः ' इस श्रीमत्पूज्य अमितगति आचार्य के वचनोक्ति को सामने रखकर सकल अर्थपुरुषार्थ साध्य करने की शक्ति प्राप्त हो जानेके लिये विद्यार्थियों को मुख्यतः धार्मिक शिक्षाके साथ लौकिक शिक्षण देकर जिनधर्मप्रेमी विद्वान् एवं सदाचारी बनाना इसी पवित्र उद्देशसे इस सातिशय पुण्य भूमीपर पहाडकी तलहटी मे मि. श्रावण शु॥ १३ वीर सं. २४३९ मे स्थानीय मुनिद्वय के नामसे यह आश्रम स्थापन किया ।

जिस श्रावण शुद्ध॥ १५ के शुभ दिन श्री अकंपनाचार्यादि सातसो मुनियोंका उपसर्ग निवारण किया गया, उसी शुभ अवसर पर अज्ञानसे पीडित हम छात्रोंके लिये विद्यार्जन का साधन उपस्थित किया । हम अपना सौभाग्य समझते है ।

इस वक्त आपकी उमर करीब ६४—६५ वर्षकी है; लेकिन आप अपने प्राणकी तरफ न देखकर बीचमे उपस्थित अनेक संकट बाधादिको आनंद से सहते हुए नवयुवकके समान उत्साह पूर्वक अटूट परिश्रम से आज २० सालसे विना ध्रुवफंडके यह

संस्था चला रहे हैं। आपका स्वभाव सरल, निगर्वी व मिलनसार है। छात्रोपर जान से अधिक प्यार करते है जिस से उनको निज मातापिताओंका स्मरणतक नहीं होता।

आपकी इस क्षेत्रपर अत्यंत दृढ भक्ति है। दुर्भाग्यवश यहाके भूतपूर्व प्रबंध कर्ताओंमे बेबनाव होनेसे बीचमे यह संस्था टूट गई थी व उन लोगोने यहा आपको रहने नही दिया था, तब कई सद्‌गृहस्थो व सन्मित्रोने आप को यहा पुनश्च न रहने व आश्रम न रखनेके लिये बहुत कुछ कहा था। स्व. श्री. शेठ रा. ब. पुरनसाहजी रईस आपको उधर (उत्तर हिंदुस्थानमे) संस्था चलानेके लिये एक लाख रुपिया देनेको तयार हुए थे व रजिष्टरी पत्रसे आप को (उधर) बुलाया भी था। वार्शीमे आपने बडी कठनाईसे दो बर्ष बिताए लेकिन पुनश्च इस पुण्यभूमीपर ही आये।

बीचमे इस तीर्थपर अत्यंत अव्यवस्था हो गई थी जिससे आपका हृदय अत्यंत दुःखित होता था। तस्मात् यहाकी सुव्यवस्था के वास्ते आप कई सद्‌गृहस्थोंको उत्तेजन दिया करते थे। वर्तमानमे यहाका सुयोग्य व्यवस्थापक ' तीर्थरक्षा-मंडल ' होनेमे आप ही मुख्यतः निमित्त हुए है।

आपने इस पवित्र जंगलमय स्थानको मंगल रौनकमय बना दिया है। यदि आप अपना प्रांत छोडकर इधर नहीं आते, व यहा विद्यार्जन का साधन उपस्थित नहीं करते; तो न जाने आज हम किस

बुरी हालत मे दिन बिताते ? आप के कृपाप्रसादसे यहांसे शिक्षा प्राप्त कई छत्र निजशक्त्यनुसार समाजसेवा कर अपना २ जीवनक्रम सुचारुरूपसे चला रहे है । श्री० भूपाल अप्पण्णा चौगुले एम्. ए. एल्. एल्. बी. , वर्तमान प्रोफेसर बेलगांव व पूना वाडिया कॉलेज, डॉ. नागेंद्र कृष्ण परीतकर जी. ए. एम्. एस्. , पं. विद्याकुमारजी शास्त्री, तर्करत्न पं. केंद्रकुमारजी शास्त्री, पूना आर्टिस्ट पानाचंदजी शहा शोलापुर आदि कई छात्रोने यहींसे लौकिक, अंग्रेजी व धार्मिक वगैरेह प्राथमिक शिक्षाका लाभ उठाया है । आपने यहां कच्चे घडे तयार करने का कारखाना ही निकाला है । तस्मात् इधर की जैनजनतापर आपने बहुत उपकार किया है । मै ही क्या बहुतसे सद्गृहस्थोंने लिखित व मौलिक रूपसे आपकी प्रशंसा कर कई वार कृतज्ञता प्रकाशित की है ।

इसके अलावा आपने सिरडशहापुरमें कुछ दिन श्री मल्लिनाथ दि. जैन पाठशाला का अधिष्ठातृत्व स्वीकृत किया था ।

वर्तमानमे श्रीजैनेन्द्र, नवागढ (उखलद का) कार्य भी आप फुरसत निकालकर वहां की जैनसमाजके आग्रहसे देख रहे हैं ।

ऐसे समाजसेवियोंको दीर्घायुष्य व आरोग्य प्राप्त होवें यही हमारी जिनेश्वरके प्रति नम्र प्रार्थना है ।

अंतिम निवेदन.

मेरी इस छोटीसी कृतीमे आपको बहुतसी त्रुटिया नजर आवेगी। क्यो कि मै तो केवल ज्ञानदरिद्री हूं। हिंदी भाषा व व्याकरणसे बिलकुल अपरिचित हूं। पूर्वाचार्यके ज्ञानकी दृष्टीसे उदयमें खद्योत के समान उससे भी अल्पतम मेरा ज्ञान, 'मणय. पद्मरागाद्या ननु काचोऽपि मेचक. इससे भी हीन मेरी अवस्था; ऐसी अवस्थामें मेरी यह कृति दोषी व उपहासास्पद क्यो नही ठहरेगी? किंतु

घटितमथवा नैतच्चित्रं पतज्यानिलंघितम् ॥
गगनमितरे नाक्रामेयुः किमल्पशकुंतय.

जो कुछ किया गया वह अयोग्य नही है क्यो कि गरुड समान बडे २ पक्षी जहासे विहार करते अथवा कर चुके है उस आकाशमार्गसे छोटेसे छोटे पक्षी भी निजशक्त्यनुसार आक्रमण किये-बिना नही रहते। इसीप्रकार केवल मुनिद्वयके चरणारविंद की भक्ति के वशीभूत होकर मैने मेरी शक्ति के अनुसार 'अकरणान्मन्दकरणं श्रेय' इस आचार्योक्तीको लक्ष्य बनाकर इस आख्यान (चरित्र) रूप आकाशमे सचार करनेका बडा साहस किया है।

'गुणगृह्या हि सज्जना:' केवल गुणग्रहण करना यही सज्जनोका मुख्य लक्षण है। एतदर्थ,

सुभाषितमहारत्नसम्भृतेऽस्मिन्महाम्बुधौ ।
दोषग्राहाननादृत्य यतध्वं सारसंग्रहे ॥

उपदेशरूप महारत्नोंसे परिप्लुत इस कथासमुद्रमेसे दोषरूप सुसरीको दूर कर सार ग्रहण करनेके लिये प्रयत्न करते रहेंगे ऐसी मेरी नम्र प्रार्थना है ।

अन्त मे इस मेरी अल्पकृति को अपनाकर इसके बारेमे प्रेम व रुचि व्यक्त कर दूसरे आख्यान संपादन करने के लिये मुझे द्विगुणित उत्साहित करेंगे ऐसी पूर्ण आशा है ।

दोषोंके लिये वाचकोका मै पूर्ण क्षमापात्र हू ।

आभार प्रदर्शन.

श्री. पूज्य दोशीजीने यह चरित्र प्रसिद्ध किया है । आपके शुभाशिर्वाद सप्रेम व पूर्ण सहायतासे मुझे यह दो शब्द लिखने की शक्ति प्राप्त हुई है । मैं तो आपका आजन्म ऋणी हू ।

मेरे परमप्रिय विद्वान् मित्र श्री. विद्यावाचस्पति पं. वर्धमान जी शास्त्री, न्याय-काव्य-तीर्थ मूडबिद्रीकर जो सांप्रत सोलापुरमे रहते है उनको यह चरित्र संशोधन कर व उसपर प्रस्तावना

लिखनेके बारेमे मैंने नम्र प्रार्थना करनेपर स्वीकृतिस्वरूपमें उन्होंने मुझे अभिवचन दिया था जो प्रत्यक्ष कृतीमें पूर्ण करके दिखलाया इसलिये मै उनका अत्यत आभारी हूं.

ब्रह्मचर्याश्रम,
कुंथलगिरि
वर्ष प्रतिपदा
वीर सं. २४६३

आपका नम्र,

बालसुत.

समर्पण

जिनकी सत्कृपासे मेरा जीवन पावन हुआ,

जो धार्मिक व सामाजिक सेवाके लिये

अहर्निश प्रयत्न करते है, ऐसे

श्री पूज्य ब्र. पार्श्वसागर महाराज

अधिष्ठाता श्रीदेशभूषण कुलभूषण

ब्रह्मचर्याश्रम के करकमलो मे

गुरुभक्तिके चिह्नरूपमें

यह अल्पकृति सादर

समर्पित है।

फाल्गुन शुद्ध ९
वीर सं. २४६३

नम्र लेखक—
गो. बा. वीडकर.
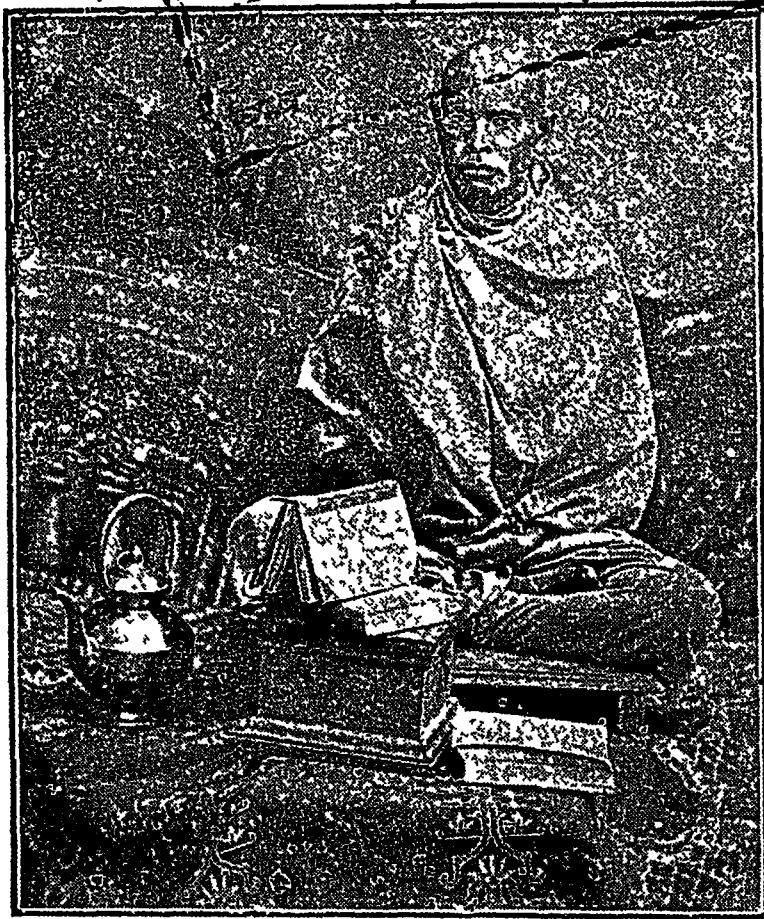
पूज्य ब्र. पार्श्वसागरजी महाराज.

अधिष्ठाता श्री दे. कु. ब्रह्मचर्याश्रम,

कुंथलगिरी.

कल्याण पावर प्रेस, सोलापुर.

प्रातःस्मरणीय महर्षि देशभूषण कुलभूषण स्वामीने मोक्ष-धामको सिधारकर श्री क्षेत्र कुंथलगिरी में अमर कीर्तिकी स्थापना की है। वस्तुतः महापुरुषोंका जीवन ही प्रभावको लिया हुआ रहा करता है। उनके जीवनसे अनंत आत्मावोंका उद्धार प्रत्यक्ष व परोक्ष रूपसे हो जाता है। वीतरागी तपस्वी जिस मार्गपर चलते है वह सबके लिये आदर्श, वे जो कुछ भी प्रमादरहित वचन बोलते हैं वह आगम, वे जहां ठहरकर तपश्चर्या करते है वह पुण्यक्षेत्र और जहांसे इस नश्वर शरीरका परित्याग करते है वह सिद्धक्षेत्र होजाता है। वह स्थान सर्व सामान्यके लिये वंदनीय ही नहीं पापरजोंको धोनेके लिये साधक होजाता है। इस प्रकार परमपावन पुण्यक्षेत्र कुंथलगिरी भी उन महात्मावोंके तप प्रभावसे पवित्र होचुका है।

तपोसाम्राज्यका वर्णन.

जिन मुनिराजोंकी चरण रजसे यह तीर्थस्थान पवित्र बना हुआ है वे दोनों गार्हस्थ्य जीवन में अनेक विद्यावोंमे निपुण राजकुमार थे। आकस्मिक बुद्धिचाचल्य के प्रभाव से वे वैराग्ययुक्त होकर अंतरंग व बहिरंग परिग्रहोंको परित्याग कर

युगलने तोतोको अभयदान दिया है। चारो दानोमे अभयदान श्रेष्ठ कहा जा सकता है, उसका संस्कार आत्माके साथ बहुत देरतक टिक सकता है। उसीका फल है कि आज पुराण-पुरुषोत्तम रामचंद्र भी समयपर सेवाके लिये उपस्थित हुए। इसलिये जीवनको संस्कृत बनाना चाहिये।

जीवमात्रके लिये संस्कार एक ऐसी चीज है जो जीवनमे एक अद्भुत परिवर्तन कर देती है। संस्कारका सीधा व सरल अर्थ अभ्यास। यदि कोई सदभ्यासोसे अपने जीवन को पावन बनाता है तो उसका प्रभाव दूसरोपर भी उसी प्रकार पडता है। और उसके प्रभावसे दूसरे जीव भी अपनी परिस्थिती व द्रव्यक्षेत्रकालभावानुसार अपने आत्मोद्धारके कार्य में लग जाते है। इसी प्रकार असदभ्यास से परिपूरित मनुष्यका जीवन लोकमे निंद्य व गर्हणीय ठहरता है। लोक के प्रति भी उसका प्रभाव अच्छा नहीं होता है। इसलिये सुसंस्कृत जीवनका होना परमावश्यक है। वह काललब्धि आदिको पाकर आत्मकल्याण करनेमे सहायक होता है। यह संस्कार एक ऐसी वस्तु है जिसके विना कि साक्षात्परमतत्व जो आत्मसुख वह प्राप्त हो ही नहीं सकता। परम सुखकी प्राप्तिके लिये आत्मा संस्कारित ही होनी चाहिये। जैसे औषधी स्वरूप द्रव्यमे नाना प्रकार के नाना संस्कार देनेसे वही औषधी एक महान् रसायन बनजाती है, इसी तरहसे यह आत्मा—जीव भी वार २ संस्कारित करने से आखीर यह परमपवित्र सच्चिदानंद अखंड परमसुखस्वरूप

पहिले ही] कई बार हमने गन्धोदक नमन लिया है । बिना पुजारी या अन्य किसीके प्रक्षाल किये गन्धोदक मिलना इस से यह सिद्ध है कि, भगवान् की चरणपादुका का प्रक्षाल देवोद्वारा किया गया हो ।

तीसरी बात यह भी सुननेमे आई है कि, श्री पूज्य ब्र. पार्श्वसागरजी महाराज वर्तमान अधिष्ठाता श्री देशभूषण कुलभूषण ब्रम्हचर्याश्रम कुंथलगिरी के भ्राता भूतपूर्व सुपरिण्टेण्डेट श्रीयुत हजारीलालजी महावीरनिर्वाणके दिन सवेरे प्रातः भगवान् की पूजा करते थे । यद्यपि वहा सभी मंडली उपस्थित थी और अपना २ पूजनादि कार्य करती थी । तो भी उस वक्त उनको देवों द्वारा श्री देशभूषणकुलभूषण मुनिद्वय की चरणपादुका का पूजन करते हुए दिखाई देना यह भी एक महान् अतिशय की बात है और इसीसे इस क्षेत्र की अधिक महत्ता और परमपवित्रता व्यक्त होती है ।

कीर्तन.

यों तो आत्माका कल्याण प्रभूके नामस्मरणमात्रसे होता है इसमें किसी प्रकारका शक नहीं है । फिर भी ' जितने व्यक्ति उतनी ही प्रकृति, हुआ करती है । इस कथन के अनुसार किसी को नामस्मरणमात्रसे ही संतोष होता है, तो किसी को प्रभुके गुणगान स्वरूप गायन करने मे आनन्द आता है । तथा कोई स्तुति स्तोत्रादिके पठन मात्रसे ही अपनी आत्माको

सखाराम दोशीने निरीच्छ भावनावोंसे एवं स्वाभाविक भद्रपरिणामसे प्रेरित कीर्तनकलासे उत्तर हिंदुस्थानके भाईयोको भी परिचय कराया है। दक्षिग हिंदुस्थानमें कीर्तनकार बहुत हैं, परंतु उत्तर व दक्षिणमें दोनों जगह कीर्तन करनेका सबसे अधिक सफल श्रेय धर्मवीरजीको ही मिला है । इसालिये ही धर्मवीरजीने मराठी भाषामे अनेक कीर्तनोंको प्रकाशित कर भी उस से तृप्त न होकर हिंदीमे यह कीर्तन प्रकाशित किया है। इसके लिये जैन समाज उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित किये विना नहीं रह सकता ।

लेखकने इसका संशोधन भार हमारे ऊपर डाल दिया। अच्छा होता यदि किसी अन्य हिंदीय विद्वान् के जुम्मे यह कार्य किया जाता। साथमे खेद इस बातका है कि पुस्तक प्रेसमें देनेके बाद ही हमे धवल ग्रथके कार्यके लिए धर्मवरिजीके साथ जाना पडा। इसालिये छपाईका कार्य हमारी अनुपस्थितिमे होनेसे बहुतसी अशुद्धिया रहगई। आशा है विद्वद्गण इसके लिये क्षमा करेंगे ।

इस कीर्तनको अपनाकर उत्तर हिंदुस्तानमे भी कीर्तन का प्रचार किया जाय या इसके प्रचारके लिये कोई कीर्तन संस्थाकी नियुक्ति हो जाय तो लेखकका परिश्रम सफल होजायगा।

सोलापूर
ता. १--४-३७

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री.
(विद्यावाचस्पति)
(संपादक जैनबोधक)

श्रीदेशभूषणकुलभूषणमुनिभ्यां नमः।

श्री कुलभूषण-देशभूषण-कीर्तन तरंगिणी

भाग १ ला.

प्रथम परिच्छेद.

महावीर—स्वामीके समवशरणमें.

मंगलाचरण.

[यमन—त्रिताल]

पदकमल मैं नमूं। तुम्हारा ॥
सुरनर मुनिगण वंदत सब ही। मंगलकारि ! अनंगारि ॥ धृ० ॥
श्री कुल-देश-विभूषण स्वामी !
गात चरित्र तुम्हारा जी।
जनमन हर्षपूर्ण सुन होवे। हरे दुरित सुखकारि ॥ १ ॥

अनादि कालसे स्वयंभू ऐसे महान् जंबूद्वीपांतर्गत इस भरत-खंडमें मागध नामका एक देश था। उसमें इंद्रपुरीतुल्य राजगृही नामका एक नगर था जो धनधान्यादिकसे समृद्ध था। इस नगरका महान् पुण्यशाली, महा-प्रतापी, शक्तिमान् श्रेणिक नाम का राजा था जो न्याय नीतिसे प्रजाका पुत्रवत् पालन करता था। यह दृढसम्यक्त्वी व जिनधर्मपरायण होने से सारी नगरवासी जनता जिन-धर्म पालन में व उसकी प्रभावना करने में अहर्निश दत्तचित्त रहती थी। छोटे बालकोंसे वृद्धोंतक जिधर उधर मुनिजनोंका गुणकीर्तन, धर्म-चिंतन, तत्वविवेचन आदि करते हुए लोग नजर आते थे। सुभाषितकार कहते हैं:—

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते. यथा राजा तथा प्रजाः॥

भावार्थ—राजा धर्मका दृढ-भक्त होगा तो प्रजा भी धार्मिक होती है; और राजा ही स्वयं पापाचारी हो तो प्रजा भी पापी बनती है। सारांश-राजाका जिस तरह बर्ताव होगा उस तरह प्रजा भी अपना बर्ताव रखती है। श्रेणिक महाराज धार्मिक एवं नीतिमान् होनेसे प्रजा,

परस्पराविरोधेन त्रिवर्गो यदि सेव्यते।
अनर्गलमदः सौख्यमपवर्गो ह्यनुक्रमात्॥

इस नीतिके अनुसार तीनों पुरुषार्थोंमें परस्पर बाधा न पहुंचाते हुए धर्मको अनन्य भक्तिसे सेवन करती थी।

इस राजा को तद्गुणानुरूप चेलना नामकी राणी थी। वह सुशील पतिभक्तिपरायण व धार्मिक होनेसे राजा को अत्यंत

हर्ष होता था। राजनिष्ठ प्रजा इस महाराणी को अपनी माता के समान समझती थी।

एक दिन प्रातःकाल का प्रशांत समय था। पक्षीगण अपने ' चीं ची ' शब्दसे किलकिलाट कर निद्रित जनता को जागृत कररहे थे। दिनमणी उदयाचलपर आरूढ होनेके कारण पूर्वदिशामें गुलाबी छटा और प्रातःसमय का मंद मंद शीतल वायु लोगोंके चित्तमें नितांत आनंद देरहे थे। ऐसे आनंदमय समयमें राजगृहीके राजमहलमें बन्दीजन राजराजेश्वर श्रेणिक महाराज के गुणानुवादको गारहे थे; और विश्वको मोहित करनेवाले मंगलवाद्य बजारहे थे जिससे श्रेणिक महाराजकी नींद खुल गई। महाराज शय्यापरसे झट उठकर नित्य नैमित्तिक क्रिया-स्नान देवदर्शनके बाद राजदरबारमें आये व सिंहासनाधिष्ठित हो प्रधान मंडलसे बातचीत कर रहे थे कि अचानक उद्यानका माली आया व उनको राजभक्तीसे प्रणाम कर कहने लगाः—

नोटंकी.

सुभाग्य भानूदय हुआ हृदयाचलपर आज।
सत्य पुण्यके पात्र हो तुम नरपुंगव नृपराजजी॥
मोह महामद-मदन-हर महावीर महाराज।
विमलज्ञानी विपुलाचलपर आये श्री ऋषिराजजी॥
निजोद्यानमें सब हुए पुलकित पुष्पफलादि।
प्रभूपादके स्पर्शसे पयपरिपूरित कूपादिजी॥
निसर्गरमणी खुल गई अनुपम युवतिसमान।
विहंगगण आनंदसे करता है जिनगुणगानजी॥

त्रैलोक्य को तिलक समान भूषणभूत वने हुए है भगवन्! आज आपके चरणकमलोंका दर्शन होनेसे मेरे दोनों नेत्र सफल हुए। आज मुझे यह संसारसमुद्र चुल्लकके समान प्रतीत हो रहा है। और,

पद

(सारंगः—झंपताल.)

धन्य भो! वीर जिन! पूर्ण कर कामना!
गणधर मुनी सभी करत आराधना ॥ ध्रु ॥
कर्म संहारके मोक्षसुख दो मुझे। तार भवतापसे।
त्रिजग-कुल-भूषणा! ॥ १ ॥

पुनश्च!

श्लोक

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ।
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय।
तुभ्यं नमो जिन भवोदधिशोषणाय ॥

हे भगवन्! तीनों लोकका दुःख नष्ट करनेवाले आपको नमस्कार हो; धरातलपर सबसे उत्कृष्ट भूषणसमान आपको नमस्कार हो; तीनों जगतके परमेश्वर, आपको नमस्कार हो और भवसागर शोषनेवाले श्री जिनेंद्र! आपको नमस्कार हो!

इस प्रकार राजा, स्तुतिके बाद अपने परिवारसहित बड़े भक्तिभावसे व हार्दिक उमंगसे त्रिवार, साष्टांग प्राणिपात कर मनुष्योंके कोठेमें जा बैठा। महावीर स्वामिका उपदेश होनेके

पश्चात् मगधाधीशने गौतमगणधरजी को सादर नमस्कार कर कहा कि महाराज ! दारिद्रपीडित मनुष्यको चिंतामणि रत्नकी प्राप्तीसे जैसा आनंद होता है वैसा हर्ष मुझे जैनकुल मिलनेसे हुआ है। आपका अत्यंत तेजस्वी, पूर्ण प्रकाशवान् मुखचंद्रमा देखनेसे मेरा मोहांधकार नष्ट हुआ है। और मुझे क्षायिकसम्यक्त्व प्राप्त होनेसे जैनधर्मामृत प्राशन करनेकी हमेशा तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है। श्री जिनेंद्र भगवान के मुखसे जो आज उपदेश हुआ उसमें स्वामीजी ने अभयदान का वर्णन मुख्यतासे किया। अतः हे कृपानाथ, इस दानमें जो महान् पुण्यशाली व्यक्ति प्रसिद्ध होगये हैं उनके चरित्र सुननेकी अभिलाषा मेरे अंतःकरणमें उत्पन्न हुई है। उसे पूर्ण करनेमें आप ही समर्थ हैं।

श्रेणिक का यह प्रश्न सुनकर गणधर महाराज संतुष्ट चित्तसे कहते हैं:—

कामदा.

भूप ! सुन कथा शांत चित्तसे।
मुक्तिपद मिला अभयदानसे।
श्रेष्ठ फल बडा अभयदानका।
शीघ्र करत है नाश पाप का॥

राजन् अभयदान का फल अत्यंत श्रेष्ठ माना गया है। इसमे प्रसिद्ध हुए व्यक्तियोंकी जो कथा कहूंगा वह सर्व पातकोंको नाश करती है। अतः सावधानीसे श्रवण कर।

कथाप्रारंभ.

ओवी

राजा सिद्धार्थ नगरी का। प्रेम से पालन प्रजाका।
करता था; जैन-धर्म का। भक्त एक निष्ठ था ॥ १ ॥

सिद्धार्थ नगरी का धर्म-निष्ठ राजा अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था। उस की प्रजा भी अत्यंत राजनिष्ठ व धर्म-कार्यमें सदा सावधान रहती थी। उस के शासन में प्रजा को अन्याय वा अनीतिका पता ही नहीं था; न परचक्र से कोई बाधा ही थी।

आर्या.

नृपनाथ क्षेमंकर, तत्पत्नी सुगुणमंडिता विमला।
शोभति थी पतिगृह में मानों नभ में सुरम्य इन्दुकला ! ॥१॥

उस राजा का नाम क्षेमकर और उसकी राणी का नाम विमला देवी था। वह सुंदर, गुणवती, धर्मनिष्ठ व पतिभक्तिपरायण होनेसे आकाशमें चंद्रिकाके समान राजगृह में शोभा देती थी।

आर्या.

कुल-देश-भूषणाभिध पुत्र हुए दो सुपुण्यसे उनको।
यशसौरभने उनके किया सुगंधित सभी दिगंतरको ॥ १ ॥

उस दंपति को पूर्व पुण्योदयसे श्रीकुलभूषण व देशभूषण नाम के दो पुत्र हुए जो तीक्ष्ण बुद्धिधारी, स्वरूपवान् व धर्म मे तल्लीन थे व जिनके यशसौरभसे सारा दिग्मंडल व्याप्त हुआ था।

द्वितीय परिच्छेद.

पूर्वभवकथा

शठं प्रति शाठ्यं ।

राजन् ! गणधर स्वामी कहने लगे "तूने अच्छा प्रश्न किया उपसर्ग निवारण होनेके बाद जब मुनियुग्म को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, तब यही प्रश्न उपसर्ग निवारण करनेवाले श्री रामचंद्रजीने किया था, उसपर उन्होंने जो अपना पूर्वभव वृत्तात उनको कहा था, वही तुझे मै कहता हू। शांत चित्तसे सुन !"

आर्या

पंकजखेटक नामक नगरी इक आर्यखंडमें भारी ।
अनुपम जिनमंदिरयुत अमरपुरीतुल्य थी मनोहारी ॥

नाना नदनदियोसे और पर्वत श्रेणियोसे विभूषित इस रमणीय आर्यखंडमे पंकजखेटक नामकी एक मनोहर नगरी है। उस नगरीमें बहुत जिनमंदिर होनेसे दृढ सम्यक्त्वी श्रावक श्राविकाओंकी नित्यनैमित्तिक क्रिया अविच्छिन्न रूपसे चलती थी। जिनालयोंमें गुणवती श्राविकाये कोकिलकठके समान अत्यंत मधुर आवाजमें सर्वत्र जिनगुणगान करती थी, जिससे श्रोताओंका चित्त धर्मके प्रति तल्लीन होता था। यह नगरी धनधान्यादिकसे संपन्न होनेसे इसका वैभव इन्द्रके इन्द्रपुरी को भी लज्जित करता था। ऐसे इस पंकजखेटक नामक नगरमें वसुकांत नामका

एक वैश्य रहता था। वह धार्मिक और विद्वान होनेसे उसकी कीर्ति सर्वत्र फैली थी।

आर्या

वसुकांत की सुपत्नी वसुकांता पूर्ण कांतसेवामें ॥
सुरसुंदरिसम सुंदर रहती थी रत सुधर्मपालनमें ॥

इस पवित्र पत्नी के पवित्र सहवास में रहकर धर्म, अर्थ व काम इन तीनोका सेवन करते हुए वसुकांत अपने को धन्य समझता था। एक कवि कहता है:—

त्रिवर्ग संसाधनमन्तरेण ॥
पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ॥

त्रिवर्ग के साधनविना मनुष्यका जीवन पशुके जीवनतुल्य निष्फल होता है। अतः वसुकांत अपना जन्म सफल समझता हो तो इसमे आश्चर्यकी क्या बात है ? कुछ दिनके बाद:—

दिंडी

भानुशशिसम दो हुए कान्तिधारी ॥
उभयता को सुत, हुआ हर्ष भारी ॥
हुआ हर्ष न सुतलाभ के समान ॥
स्वर्गसुखका फिर मूल्य तृणसमान ॥

पुत्रके सामने स्वर्गसुखका भी आनंद व सौख्य तृणसमान माना जाता है यह बिलकुल ही सत्य है। वसुकांत इसी कारणसे सदैव आनंदमग्न रहता था। उसको अब कोई पर्वा नही थीं क्यों कि पूर्व पुण्यके उदयसे उत्तम स्त्रीका लाभ, साथमें उसमें भी

" कुलं पुनातीति पुत्रः । "

कुलकी कीर्ति बढानेवाले स्वरूपवान् सुपुत्रकी प्राप्ति होनेसे वह अपने गृहस्थाश्रमको धन्य समझता था। सुभाषित में कहा है:—

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनयधीगुणोपेतः॥
तनये तनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम्॥

ऐसी अवस्था वसुकांत को प्राप्त हुई थी; अस्तु। कुछ दिन बीत जाने के बाद:—

आर्या.

जिनदासार्हद्दासाभिधान दोनों किया सुपुत्रों का॥
रुचि बालखेल में ना खेल खेलते सदैव धर्मोंका॥ १॥

नामकरणविधि करते समय मातापिताके मनमें इस नाम के बारेमें कुछ भी कल्पना नहीं थी। लेकिन भविष्यमे नाम के समान जब सद्गुण प्रगट होने लगे तब उनके नाम अन्वर्थक सिद्ध हुए। 'नाम सोनुबाई और हाथ में लोहेकी चूडियां' ऐसा नही था। उन को निसर्गसिद्ध धर्म का सदैव ध्यान लगनेसे उनका सारा समय सामायिक, देवपूजा शास्त्राध्ययन मे जाता था।

एक दिन नागरिक जिनेंद्र भगवान के गान गाते व जय जयकार करते हुए नगरके उद्यानकी तरफ जा रहे थे जिन को देखकर जिनदास व अर्हद्दास को बडा आश्चर्य हुआ और उत्साह से पूछा, "सज्जनवृंद! इतने आनंद से आप लोग कहां जा रहे है?"

इन दो भाईयो के समान यदि कोई दूसरे छोटे बालक इस प्रकार प्रश्न करते तो शायद उनको कुछ जबाब भी नहीं मिलता; किंतु इन दोनों बालकोंकी धर्मप्रवृत्ति लोगोंको अच्छी तरहसे विदित होनेसे उन्होने बडे आदरसे उत्तर दिया:—

साकी.

अट्ठाईस गुणधर गुणसागर आये इक भैय्याजी ॥
नगरनिकट ही उपवन में हम दर्शन को सब जनजी ॥
जाते, तुम चलना ॥ अर्हत्प्रसाद अब लेना ॥ १ ॥

इस प्रकार पवित्र वार्ता सुनते ही दोनो भाइयोंके मन में तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हुई, और जानता के साथ दर्शनार्थ निकले। किंतु जाते जाते रास्ते मे ही एक आकस्मिक घटना उपस्थित हुई।

आर्या

मुनि दर्शन को निकले, तब आया एक नजर रास्ते में ॥
क्रूर व्याध पकडकर करता था ठार विहग हाथों मे ॥

एक व्याध और उस के हाथमे एक पक्षी देखकर दोनो भाइयोका हृदय छिन्न भिन्न हुआ। मुनिदर्शन के पहिले पक्षीको जीवन्मुक्त करना अपना आद्य कर्तव्य समझकर वह दयार्द्र बुद्धीसे व्याध को कहने लगे.—

दिंडी.

व्याध ! पक्षी मत मार निरपराधी ॥
रहम कर इसको छोड नहीं व्याधा ॥
मरणकी सहता लेश कदा प्राणी ॥
नरक हिंसक पाता है दुखदानी ॥

" अरे भाई, हिंसा के समान घोर पाप नहीं ! हिंसक नरक का पात्र बनकर अनंत कालतक घोर दुःख पाता है। तुझे यह मनुष्यजन्म महत्प्रयास से मिला है अतः कुछ पुण्य कमायगा तो दूसरे भव में भी सुख पायगा। जीवदान के समान पुण्य नहीं। शास्त्रका वचन है :—

यो दद्यात्कांचनं मेरुं कृत्स्नां चापि वसुंधराम् ॥
एकस्य जीवितं दद्यात् फलेन न समं भवेत् ॥

अर्थात् जो मनुष्य सुवर्णका पर्वत देकर व पृथ्वीदान देकर जो पुण्य प्राप्त करता है उसका पुण्य एक ही जीवको जीवदान देनेवाले मनुष्यके पुण्यकी बराबरी हरगिज नहीं कर सकता। इसलिये तू इस पक्षी को छोड दे। यदि कुछ मोबदला लेनेकी तेरी इच्छा होगी तो हम आनंदसे तुझे वह देनेके लिये तैयार है आखिर जिनदास ने अपने गलेमेसे एक हार निकालकर उसको दिया। सब तृष्णामे द्रव्यतृष्णा बुरी होती है। क्यो कि,

दोहा

मन मरे माया मरे मर मर गये शरीर ॥
धनकी तृष्णा ना मरे कह गये दास कबीर ॥

संत कबीर का कहना बिल्कुल सत्य हे। इस तृष्णाको वशीभूत होकर बडे बडे विद्वानोने अपना शील भ्रष्ट किया है। अनेक मनुष्य इसमे गोते खाकर तीव्र दुःख पाते है। बहुतसे लोगोने द्रव्यप्राप्त्यर्थ न्यायनीतीको ठुकराकर अपने फैले हुए सद्यशको कलंकित किया है। यह अर्थतृष्णा सब अनर्थोंका मूल है! और यह भी विचारो,

च्युता दन्ताः सिता केशा दृङ्निरोधः पदे पदे ॥
पातसज्जमिमं देहं तृष्णा साध्वी न मुञ्चति ॥

इस उक्तीके अनुसार मनुष्यको आजन्म छोडती ही नही। हर एक प्राणी इसके जालमें फंसकर अनंत कालतक दुःख भोगता हुआ संसारमे भटकता है। बडे बडे लोगोंकी यह अवस्था तो

"हैं पागल जो रहम करते हमारी नीति हिंसा है ! ॥
"मैं करता ठार हूं इसको जो नभसे दौडता आया ॥ २ ॥
अपने उपदेशका कुछ असर उसके कठिन हृदयमें होते नहीं देखकर तुंगभद्र क्रुद्ध होकर कहने लगा:—

पद.

[जठरानल शमवाया—त्रिवट.]
निर्दय नर उदरंभर जग में ॥
प्राणि दीन वध कर खाते हैं ! ॥ ध्रु. ॥
कह हमको, तू कितने मारे ॥
व्याध ! अधम अय पशु अबतक रे ? ॥
मांग हृदयि खल ! खास नरक रे ॥
होगा प्राप्त न संशय इसमें ! ॥ १ ॥

" रे नीच ! तेरे सरीखे जो विवेकशून्य अधम अपने उदरंभरणार्थ निर्दयतासे हजारों अज्ञ जीवोंको ठार करते हैं, अथवा जंगलमें तृणपर अपना जीवन विताने वाले व दूसरोंको लेशमात्र भी पीडा न देनेवाले प्राणियोंका नाश कर अपना उदरनिर्वाह करते हैं उनके लिये नरकका दरवाजा खुला है। शास्त्रकारोंने प्राणिहिंसाको दुर्गतीका द्वार, घोर पातकोंका भार, रौरव नरक और महाधअं:कार माना है सुन,

हिंसैव दुर्गतिद्वारं, हिंसैव दुरितार्णवः ।
हिंसैव नरकं घोरं, हिंसैव गहनं तमः ॥

और भी,

सप्तद्वीपवतीं धात्रीं कुलाचलसमान्विताम् ।
नैकप्राणिवधोत्पन्नं दत्त्वा दोषं व्यपोहति

समस्त दानो मे अभयदान श्रेष्ठ है एतदर्थ कुलाचल पर्वतों-सहित सात द्वीपकी पृथ्वी भी दान करदिया जाय तो भी एक प्राणी को मारने का पाप दूर नहीं हो सकता । इस लिये हमारा कहना मान, यह पक्षी छोड दे । नहीं तो इसका नतीजा बुरा होगा ।

इस प्रकार नाना युक्तिप्रयुक्तियोंसे बहुत कुछ उपदेश दिया, धमकाया, लालच बताई; परतु उस कसाई के अंतःकरण में दया का अंश भी उत्पन्न नहीं हुआ । आखिर,

दोहा.

मार मार बेदम किया, व्याध नराधम दुष्ट ।
मुक्त किया झट विहगको मन में अतिसंतुष्ट ॥
अभयदानसे पुण्यधर, कपिंजल-दोय कुमार ।
भये कथा आगे सुनो स्वर्गमुक्तिदातार ॥

उन तीनोने उस दुष्ट को चोदहवा रत्न दिखाया । कोई दुर्जन सामदामसे सन्मार्गपर नहीं आवे तो उनका इसी तरह ही शासन करना उचित है । 'शठं प्रति शाठ्यं' हुए विना नचि के हृदय मे प्रकाश कभी नही पडता यह बात निःसंशय सत्य है ।

द्वितीय परिच्छेद समाप्त.

तृतीय परिच्छेद.

खूनको खून.

खलो न साधुतां याति सद्भिः संबोधितोऽपि सन् ॥
सरित्पूरप्रपूर्णोऽपि क्षारो न मधुरायते ॥

दुष्ट, अधमाधम मनुष्यको कितने ही उपदेश दे उसमें सज्जनता कभी नही आवेगी। व्याध इसी तरह का मनुष्य था। लेकिन उसकी काललब्धि कुछ निकट आई थी। उसको इतना बेदम मारा था कि उसकी मरणोन्मुख अवस्था हुई। दण्डसे कौनसा प्राणी योग्य पथपर नही आता? उसने किसान का जो उपदेश सुना था उससे व दोनो कुमारोके शासनसे उसके हृदयमें अहिंसाका गहरा परिणाम हुआ। उसका अंतःकरण पश्चात्तापसे विदग्ध हुआ। उसी समय उसने हिंसाका त्याग किया। उसके जो शुभ परिणाम हुए वह आजन्म कायम रहे। अर्थात् उत्पन्न हुए पुण्यबंधसे मृत्युके बाद राजाके पुरोहित घरानेमें उसका जन्म हुआ। अभयदानके निमित्तसे पुण्यसंचय करनेवाला किसान—तुंगभद्र उसी राजाका मुख्य प्रधान हुआ। किरात की स्त्री मरकर मंत्रीकी स्त्री हुई और किसान की स्त्री पुरोहितपत्नी बन गई। वह पक्षी महाबल नाम का सेनापति हुआ जिसको मरते समय णमोकार मंत्र दिया था। णमोकार मंत्रका अचिंत्य प्रभाव है इससे सब संकट नष्ट होकर सर्व प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं।

प्रधानपत्नीके गर्भमें जिनदास व अर्हद्दास वैश्यबंधुओने जन्म-धारण किया। क्रमसे दोनों मत्रीपुत्रोने अपनी बाल्यावस्था पूर्ण कर जब युवावस्थामें पदार्पण किया तब इनका बडे ठाटबाटसे विवाह हुआ। सुदैवशात् दोनोंको भी सुशील एवं सुदर पत्नियां प्राप्त हुई।

पूर्वार्जित कर्मके प्रभावमे पुरोहित और प्रधान इन दोनोंमें गाढ स्नेह उत्पन्न हुआ। वह नित्यशः मंत्रीके घर आने लगा। और उसे बहुत प्रेम दिखाने लगा। किंतु उसके अत करणमे पाप था। उसकी पापीनज़र मंत्री के स्त्रीपर पडकर कामसे विह्वल हुआ। आखिर योग्य व एकांत समय देख उसने अपनी पाप वासना उस स्त्रीमे प्रगट की। पूर्व जन्मका संबंध कुछ विलक्षण ही होता है। दुर्दैवसे वह स्त्री अधम पुरोहित के मिष्ट भाषणसे लुब्ध हुई। उसके शरीरमें मदन सचार हुआ। मदन का प्रभाव विलक्षण होता है। बडे बडे महात्मा कहलानेवाले मुनि भी इस जंजालमे फंसकर अपनी तपश्चर्यासे भ्रष्ट हुए तो फिर इस यःकश्चित् स्त्री की क्या बात? दोनो विवेकशून्य थे। दोनो का भी काम-विकार दिन प्रतिदिन बढने लगा।

साकी.

कुटिल पुरोहित कपटभावसे धर मैत्री मंत्रीसे !
लुब्ध हुआ तत्पत्नी वश कर मिष्ट वचनसे उससे ॥
की कामुक-चेष्टा। भई शीलसे च्युत कुलटा॥

पुरोहित ऊपरसे मंत्रीको गाढ प्रेम दिखाता था परंतु उसका अंत:करण जहरीले जहरसे भरा हुआ था। वह

अधम मंत्रीकी पत्नीसे सिर्फ वार्तालाप करने की दुष्ट भावनासे मंत्रीके घर आता था। अनेक प्रकारकी शृंगारचेष्टासे वह अपनी नीच कामना दिखाने लगा। मंत्रिपत्नी का दिल कच्चा था। वह उसके विलासो हावभाव से लुब्ध हुई थी। सामान्य स्त्रियोंका अंतःकरण जमीन के समान होता है। उसमे जैसा बीज बोया जाय उसी तरह फल आता है। बालपनसे उनको नीतिका शिक्षण दिया, नीतिका मार्ग दिखाया तो आजन्म वह नीतिमार्गका ही अवलंबन कर नीतिसंपन्न होती है। और इसके विरुद्ध उनको अनीति की शिक्षा दी जाय तो वह कसी भी सन्मार्गसे च्युत हुए विना न रहेगी। प्रधानकी स्त्री सामान्य स्त्री थी। वह पुरोहितपर प्रेम करने लगी। कुबेर के समान घरकी दौलत, पहनने के लिये अमूल्य वस्त्राभरण, सेवा करने के लिये हजारों दास-दासी, स्वर्गभवन के समान रंगमहल, सर्व राज्यमें सत्ता दिखाने-वाला व चातुर्यसे राज्यशकट चलानेवाला लेकिन घरमे स्त्रीके अर्धवचनमे रहनेवाला और उसके सर्व मनोरथ पूर्ण करनेवाला मदन के समान सुंदर, तरुण व विद्वान पति, ऐसी परिस्थिति होते हुए भी उससे उपेक्षाकर मदांधसे वह पुरोहित को प्रेमालिंगन देकर पातिव्रत्यसे पतित होगई! मातापिता व श्वसुर इन दोनोके कुलयश को कलंकित किया!!

चाहे पुरुष हो या स्त्री दोनो को पवित्रता उनके शीलसे ही आती है। स्त्रियोंके शील निसर्गसिद्ध गुण होता है। उसके प्रभावसे वह देवादिकोंको पूज्य हो जानेसे उनकी योग्यता पुरुष व देवोंसे

कलह दिनप्रातीदिन बढने लगा । मंत्री के कानतक यह वृत्तांत गया । वह इनका कलह सुनते २ हैरान होगया । आखिर तलाश करनेपर उसका असली कारण मालुम हुआ कि कलहकी मुख्य उत्पादिका अपनी ही स्त्री है ऐसा मालूम हो जानेसे एक दिन मंत्रीने गुस्सेमे आकर उसको उपदेश दिया । परंतु उपदेशका फल उलटा निकाला, उसको बडा बुरा लगा । वह अत्यंत क्षुब्ध हुई और अपने पतीका खून करनेका उसने निश्चय किया ।

जारिणी स्त्री क्या नहीं करेगी ? अपने पापका बडा फूटना और अपना निंद्य कर्म पतीको मालूम होना यह कुछ साधारण बात नहीं है ।

तावत्कुलमर्यादा यावल्लजावगुंठितम् ॥

स्त्रियोको जबतक लज्जा रहती है तबतक वह अपने कुल अथवा पतीकी मर्यादा रखती है । निर्लज्ज बननेके बाद वेश्याओंसे भी वह नीच स्वभावी बनजाती हैं । ऐसी कुलटाए पतीको दुष्ट पिशाच्चिनीके समान अत्यंत पीडा देती हैं । दूसरेने दिया हुआ उपदेश जहरसा समझकर राक्षसिनीका अवतार धारण करती है और निर्विघ्नतासे विषयवासनापूर्तीके हेतुसे निर्दय बनकर पतीका प्राणहरण करनेके लिये प्रयत्न करती है ।

एक दिन मंत्री कुछ राजकार्यवश पलाशकूट नामक गांवको गया । इधर उसके पश्चात् जब उस कुलटा व पुरोहितका प्रेम मिलन हुआ तब उसने अपने पतीपर का क्रोध व्यक्त किया । वह पतीका खूनकर वदला लेना चाहती थी । पुरोहितको भी

क्षणमात्रमें कलंकित करने की चतुराई में त्रैलोक्य मे तूने ही नाम कमाया है। इसलिये प्रथम ही तुझ दूरसें नमस्कार है। अस्तु।

प्रधान पत्नीने पतीका ठार करने के लिये जब पुरोहितसे कहा-तब वह परस्त्रीलंपट उसकी इच्छा पूरी करनेके लिये तैयार होगया! मंत्री को मारने से अपने को अधिक सुख मिलेगा और खिलती हुई जवान प्यारी के तारुण्यकी निर्भयतापूर्वक प्रेमसे लूट करने मे आवेगी इस हेतूसे उसने नीच कार्य पूर्ण करने का अभिवचन दिया।

मत्रीका प्राणहरण करना उस गावमे अत्यत कठिन था। अतः पुरोहित पलाशकूटको गया, और वहा उसको मारनेका निश्चय किया। पुरोहितको देखते ही मंत्री अत्यंत हर्षित हुआ। सज्जनोका हृदय सरल रहता है। उन मे कपट दुर्भावनाका अश भी नही रहता। पुरोहितका प्रेमसे ठीक स्वागत होनेपर इतनी शीघ्रतासे आनेका कारण मत्रीने पूछा। पुरोहितने उत्तर दिया, "महाराज" "आप इधर आते ही मेरा दिल विरहाग्नी से बैचेन हुआ है: इसको शात करनेके लिये आपके शुभ दर्शनार्थ मैं यहा आता हूं।" पुरोहितके मिष्ट भाषणसे मंत्री को आनंद हुआ और इधर उधर का क्षेम पूछने के बाद दोनो अपनी २ जगहपर निद्रादेवी की आराधना करने के लिये गये। मंत्रीजी झट निद्रित हुऐ।

रात्रीका नितात प्रशात समय था। आधीसे भी अधिक रात बीत गई थी। जिधर उधर शून्यमय पृथ्वी दिखती थी। गाढ अंध

सेनामें हाहाकार मच गया। किसीको शंका न आजाय इस उद्देशसे पुरोहित भी उसके साथ जोर शोरसे रोने लगा। सैन्य वापिस लौटा। उसवक्त पुरोहित उसके साथ घर आया।

पाप कभी छिप नही सकता। मंत्रीके आकस्मिक खूनकी वार्ता सारे शहरमें फैल जानेपर शहरवासी जनता दुःखमग्न हुई। उसके गुणानुवाद को स्मरणकर नेत्रोंसे अश्रुबिंदु टपकाने लगी। इधर मंत्रीके घरमें उसके पत्नीके सिवाय सारा परिवार शोकसे व्याकुल हुआ। श्वसुरका खून होनेमें अपनी सास ही कारणीभूत है, उसके कहनेपर जारने नीच कृत्य किया होगा ऐसा संशय ज्येष्ठ प्रधानस्नुषाको आया; और उसने साव-धान चित्तपूर्वक बडी चतुराईसे खोज लगाया व सत्य प्रगट किया!

जारिणी की नीचकामना पूर्ण करनेमे कृतकृत्य समझनेवाला वह पुरोहित गांवमे जिसदिन आया उसी दिन निजाराध्य प्रियतमा पास आया और अपनी चतुराईका सारा हाल कह सुनाया। प्रियवरकी इस प्रकार निज कार्यपूर्तिमें निर्विघ्न यशप्राप्ती सुनकर उसको अत्यंत हर्ष हुआ। हर्षातिरेकसे उसने अपने जारको गाढ प्रेमालिंगन दिया। पुरोहित को अब स्वर्ग सिर्फ दो उंगलिया बाकी रही थी। अब क्या वह दोनों स्वतंत्र व निर्भय होगये थे। दोनों का आनंदसे प्रेमसंभाषण चला था कि अकस्मात् उस कुलटाके मुंहपर दुःखकी छटा छा गई। कारण पूछनेपर पुरोहित को उत्तर मिला कि सुखका बहुतसा मार्ग अब निष्कंटक हुआ; और भी कुछ अडचने मोजूद हैं। उन्हे दूर किये बिना मुझे निश्चितता

प्राप्त नहीं होगी । यदि आपका मेरेपर सच्चा प्रेम है तो:—

दोहा.

मस्तुत दो, स्त्री आपकी ठार किये विन नाथ ॥
दिल बेडर होगा नः ना मै कांता, तुम कांत ॥ १ ॥

इसमे मेरी ज्येष्ट स्नुषा मेरी तरफ सदैव टेढी नजरसे देखती है ! इसलिये पुत्रवध करके उसके नेत्रोसे अश्रुधारा टपकती हुई जब देखूंगी तब ही मेरा मन संतुष्ट होगा ! मैं उसका दिलसे बदला लेना चाहती हूं । आपकी स्त्री मुझे सोतेलीसरीखी है । इन सबको यमसदन दिखाये विना अपना सुखोपभोग निर्भयतासे यथेष्ट नहीं चलेगा । मेरे शरीर व जिंदगी के फिर आप ही स्वामी है ।

पुरोहित पाषाणहृदयी था । लेकिन प्रधान पत्नी का कठोर निश्चय व राक्षसी महत्वाकांक्षा सुन वह आश्चर्यसे स्तब्ध हुआ । कासाईके कठोर हृदय मे भी दया उत्पन्न करनेवाले कुलटाके वचन श्रवणकर साक्षात् यह राक्षसिनी है या डाकिनी है अथवा स्मशान भूवासिनी पिशाचिनी तो नहीं है ' इत्यादि संशयसे उसका दिल घिर गया । यह नरक्तरक्तपिपासु स्त्री निजपतीके खूनमे आनंद मानकर पुत्रहत्या करनेके लिये मुझे कहती हैं । इसमे इसे थोडी भी शरम मालूम नहीं होती । यदि यह वेश्या विगडकर गुस्सेमे आवे तो कृतघ्नतासे मेरा भी खून करनेमे इसे लेशमात्र भय प्राप्त नही होगा ! इस प्रकार के विचार मनमे वारवार आनेसे वह कितनी ही देरतक चुपचाप रहकर चित्रसरीखा उसकी तरफ देखने लगा । पुरोहित स्तब्ध हुआ देख प्रधान पत्नी को क्रोध आया और

उसकी तरफ टेढी नजर फेककर उसको झिडकार कर जरा दूर होगई। स्त्री प्रेम बडा अनिवार्य रहता है। जगतके जालको तोडनेवाले इंद्रियविजेता महात्मा ही इस मोहसे छूट सकते हैं। पुरोहित बिचारा दुबला, मदनका पूरा गुलाम बना हुआ था उसे फिर मोहने घेर लिया। उसमे प्रधानपत्नीने उसकी तरफ टेढी नजर फेंकी तब अपने दृष्टीसे मदनका ऐसा कुछ तीव्र बाण मारा कि वह उसके हृदयमंदिरमें चुभते ही कामसे व्याकुल हो उसके समीप जाकर उसको निजकरपाशमे बद्ध किया और बडे प्रेमसे कहने लगा कि प्राणप्यारी, तू मेरा दिलका कलेजा है, तेरे बिना सारा जगत् मुझे शून्य दिखता है, मुझे किसी की भी पर्वाह नहीं है। तेरा मुखचंद्रमा पूर्ण प्रफुल्लित रहनेकेलिये व उससे निकलने वाले मधुर अमृत पान करनेकी इच्छासे मैं तेरे हठको निश्चयसे पूर्ण करूंगा। पुरोहितसे अभिवचन मिलते ही प्रधानपत्नी को आनंद हुआ। कामी क्या नहीं कर सकती ?

बहुत देरसे चलते हुए दोनोका यह गुप्त रहस्यको प्रधान-पत्नीकी बडी बहू बडी सावधानीसे छिपकर बैठी हुई सुनती थी। दुष्ट सास अपने प्राणाधार पतीको नाश करना चाहती है ऐसा सुनकर बहुत कुछ घबरा गई। दोनो का प्रेम प्रलाप, कामचेष्टा देखकर उसे तीव्र क्रोध आया। भयमिश्रित क्रोधके मारे उसका सारा शरीर कांपने लगा। यदि वह पुरुष होती तो उसी वक्त दोनोंको मजा दिखाती। किन्तु वह जातिकी अबला थी साथमें उसका पती भी घरमे नहीं था जिससे यह सारा चमत्कार दिखाकर

बदला लेती। क्या करे विचारी लाचार होकर चुपचाप अपने कमरेमे सोने के लिये गई।

उसको रातभर नींद नहीं आई। सासका राक्षसी कृत्य पूर्ण करनेका निश्चय उसपर जारका अभिवचन, उनकी निडर व निर्लज्ज चित्तसे होती हुई प्रणयचेष्टा और इन सभीका प्रतीकार किसप्रकार किया जाय, दुष्टोंको किसप्रकार व कैसा शासन दिया जाय आदि विचारसे उसका दिल बेचैन हुआ। आखिर उसके पतीको यह सारा वृत्तात सुनानेका निश्चय किया।

दूसरे दिन रात्रीको को एकात समय देख उसने देखी व सुनी हुई बाते पतीको कह दी। पती पूर्ण मातृभक्त था। यह पापिनी मेरी माताको व्यर्थ झूठा दोष दे रही है। माता ऐसा निंद्य कृत्य अथवा अपने प्यारे पुत्रका खून करनेमें कभी प्रवृत्त नहीं होगी ऐसा उसको विश्वास होनेसे पत्नीके भाषणापर अत्यत क्रुद्ध हुआ और उसको खूब धमकाया।

पतीकी इस निर्भत्सनासे प्रधानस्नुषा किंकर्तव्यमूढ बन गई। दुराचरणी माताके बारेमे अपने पतीकी अंधश्रद्धा देख उसे बडा खेद होने लगा। उन दुराचारियोंके कुकर्म को पतीसे प्रतीकार होनेका आधार टूट जानेसे वह अधिक भयग्रस्त हुई। परतु उसने धैर्य नहीं छोडा। वह बडी चतुर थी। प्रातःकाल होते ही सूर्योदयके-बाद वह पुरोहितजी के घर गई व पुरोहित और अपनी सासका पाप, व उन्होने उसके व प्रधानपुत्रोंके लिये रचे हुए प्राणघातक षड्यत्र को उससे कह दिया पुरोहितपत्नीका उसपर

पूर्ण विश्वास बैठ जानेसे उसने प्रधानपुत्रको बुलाकर एकांतमें अच्छी तरहसे समझाया । तलाश करनेपर जब सत्य नजर आया तब प्रधान पुत्रके सारे शरीरमे क्रोधाग्नि भडकी और योग्य समय साधकर उसने पुरोहितका खून किया !

मेरी माताने शीलका खून किया व उसपर मोहित होनेवाले पुरोहितने कामसे पागल बनकर मेरे पूज्य पिताजीका खून किया । अतः खूनका बदला खून ही होना चाहिये इस विचारसे प्रधान पुत्रने उस दुष्टका खून किया इसे अनुचित कौन कहेगा । जिस हाथसे देना उस हाथसे लेना भी पडता है । यही जगतका न्याय है । दुष्टोंका शासन ऐसा ही होना चाहिये ।

तृतीय परिच्छेद समाप्त.
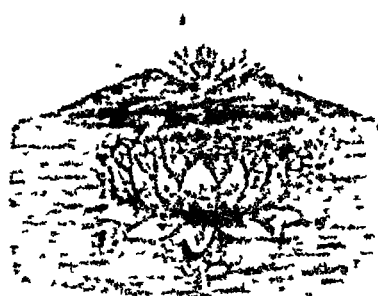
चतुर्थ परिच्छेद.

सत्यकी जय.

माता के दुराचारपर खेदखिन्न होकर प्रधान पुत्रोने उस को घर से बाहर निकाल दिया। उस वक्त से उनका मन उदास हुआ। कुछ कालतक उन्होंने संसारसुख का अनुभव किया। एक दिन नगर के उद्यान में पिहिताश्रव नासक महामुनी आये है ऐसी वार्ता सुनकर यह दोनों भाई आनदसे उनके दर्शनार्थ निकले ! और –

साकी.

पिहिताश्रवाख्य मुनिसान्निध जा, धर्मामृत सुन; धारी।
हर्षयुक्त हो मंत्रि कुंवरने मुनिदीक्षा सुखकारी।
ध्याननिरत वन में। हुई; न ममता भवसुख में॥

मुनी के पास जाकर उन का उपदेश श्रवण करना और तत्काल दीक्षा धारणकर तदाकार वृत्तीमें तल्लीन होना यह साधुसमागम का ही माहात्म्य है। तपके प्रभावसे उनके आत्मामे ऐसी ही शक्ति बढती है कि उनके वचनो का प्राणिमात्र मे प्रभाव पडता है।

शरीराहारसंहारकामभोगेष्वपि स्फुटम्।
विरज्यति नरः क्षिप्रं सद्भिः सूत्रे अनिश्रितः॥

सत्पुरुषोके द्वारा सूत्र मे शिक्षित किया हुआ पुरुष शरीर, आहार, संसार व भोगादिसे तत्काल विरक्त हो जाता है। सत्पु-

रुषोंका फल ही ऐसा होता है। शरीरादिक से विरक्त होने के कारण मोक्ष मार्गसे च्युत नहीं होता। अस्तु।

प्रधानपुत्र मुनि-दीक्षा धारणकर पवित्र जिनधर्मका आचरण करने लगे। केवल ज्ञान की अभिलाषासे आत्मध्यानमें लवलीन होकर कर्मोंके निर्जरार्थ घोर तपश्चरण करने लगे। कुछ दिनके बाद मार्गमे अनेक जीवोंको उपदेश देते हुए तीर्थाटन को निकले व सम्मेदशिखरजी आदि महान् तीर्थोंकी वंदना कर वह अपने पूर्व स्थानपर आ गये और पूर्ववत् तपश्चरण करने लगे।

मन्त्रिपुत्रके द्वारा मरा हुआ पुरोहित का जीव भिल्ल होकर उसी जंगलमें हिंसाकर अपना उदर निर्वाह करता था। वह प्रतिदिन बहुत से निरपराध प्राणियोकी शिकार कर उनका निष्कारण वध करता था। एक दिन मृगया के वास्ते इतस्ततः फिरते २ उसी स्थानपर आया जहां वह मुनि (मंत्रिपुत्र) ध्यान धर बैठे थे। मुनियोंको देखते ही पूर्वभवके वैरके कारण म्यानसे शस्त्र बाहर निकाल कर उनका शिरच्छेद करने के लिये दौडा इतनेमें महाबल नामका सेनापति, जो पूर्व भव मे पक्षी था, प्रसंगवशात् वहीं हाजिर हुआ। उसने झट भिल्लको पकडकर जेलखानेमे डलवा दिया। कुछ दिनमे उसका वहीं प्राणांत हुआ। तत्पश्चात्—

नोटकी

अरिष्टपुरिका नाथ था नियदत्ताभिध शूर।
प्रभाव सुन थे भागते अरि रणमें डरकर दूरजी॥
कनकावति, पद्मावती दो भार्याका नाम।
प्राप्त हुई सत्पुण्यसें थी शीलगुणोंका धामजी॥

अनुधर सुत इक होगया पहिली को नृपराज ।
राज्य देय उसको गये वनकर वनमें ऋषिराज जी ॥
रत्न-चित्र-चूलाख्य दो पद्मावतीके पुत्र ।
हुए सुगुणबलरूपधर यशश फैला सर्वत्र जी ॥

यही दो बालक प्रस्तुत कथाके नायक है जो पहले जन्ममें वैश्यपुत्र थे तत्पश्चात् प्रधानपुत्र हुए और वे ही महाप्रतापी पुरुष इस भवमे पद्मावतीके उदरसे अवतीर्ण हुए है जिनका शुभनाम क्रमश : रत्नचूल व चित्राचूल रखा गया । इधर:—

श्लोक.

फणिपुरनृपती की प्राणप्यारी सुकन्या ॥
विधुसम मुखकांता सुंदरी थी सुधन्या ॥
अनुगुण अनुरूपा रत्नचूलाख्य को दी ॥
सुदिन समयमें की थाटसे पूर्ण शादी ॥

" अपमान ! भयकर आपमान !! " अनुधर क्रोधाविष्ट हो सोचने लगा । " फणिपुरस्थ सुप्रभराजाने रतिसमान अपनी सुप्रभा नामक कन्या को मदन जैसे इस अनुधर को नहीं दी ! रत्नचूलका मै ज्येष्ठ भ्राता राज्यपदारूढ होते हुए मेरा धि:कार कर क्या सबबसे उस भिकार रत्नचूलसे अपने कन्याकी उसने शादी की ? रत्नचूलमे ऐसे कोनसे गुण है, उसमे ऐसा कौनसा बल है । उसका ऐसा कोनसा सुंदर रूप है जिसको मुग्ध होकर सुप्रभाने उसको वर लिया ? अपमान ! भयंकर अपमान !! बडी जोशमे आकर आगे कहने लगा, " रत्नचूल यदि तुझे प्राण की पर्वा है तो सुप्रभा को छोडकर झट मेरे सुपुर्द कर दे ! फणिपुराधीश यदि तुम्हे इज्जत की खायश है, यदि तुम्हें अपयश

का भय है तो अपनी कन्या शीघ्र मेरे चरणपर छोडो ! यदि नहीं मानोगे तो इस अपमानका बदला निश्चयसे लिये बिना न रहूंगा ! ”

अनुधरकी क्रोधाग्नि बढ गई। क्रोधसे वह लाल हुआ। उसने फणिपुर नरेशपर चढाई करनेका निश्चय किया और अपनी चतुरंग सेनाको साथ लेकर फणिपुरकी हदमें प्रवेश किया।

ओवी.

अनुधर हुआ क्रुद्ध भारी। घेरी फणिपुरनगरी।
घोर युद्धमें प्रजा मारी। रक्तमय भू हो गई॥

रास्तेमें गांव जलाते व विध्वंस करते २ अनुधर फणिपुरके ऊपर जा धमका। फणिपुर नृपतीके साथ उसने घनघोर युद्ध किया। हजारों योद्धा धराशायी होगये। रक्तकी नदी बहने लगी। अनुधर के शरीरमें क्रोधानल भडक रहा था। इसवक्त वह मदांध व बेफाम हुआ था। उसके हृदयमें निष्कारण मारे गये जीवोंकी रंचमात्र भी दया नहीं आई। क्रोधके वशीभूत होनेवाले प्राणी अविचारसे क्या २ नहीं करते?

क्रोधाद्द्वीपायनेनापि कृतं कर्मातिगर्हितम्।
दग्ध्वा द्वारावतीनाम पुरं स्वनगरीनिभां॥

देखो ! द्वीपायन नामक महातपस्या करनेवाले मुनि थे। परंतु उन्होंने क्रोधके वशीभूत होकर स्वर्गपुरीसमान द्वारका नगरी क्षणमात्रमें भस्म कर दी। तो फिर बिचारे अनुधर की क्या बात?

अनुधरकी अथांग सागरसेना थी। फणिपुरनृपतीका पराजय करना उसको कुछ मुष्किल नहीं था। थोडेही देरमें विजयश्री

अनुधर के गले में माळा डालेगी ऐसा चिन्ह स्पष्ट दीखता था। परंतु अपने श्वशुरके सहायतार्थ रत्नचूल अपने कनिष्ठ भ्राता व सैन्य को साथ लेकर दौडता आया। उसने शत्रुके साथ तुमुल युद्ध करके अपने वज्रमुष्टीसे उसको घायलकर पराजित किया। डरके मारे अनुधर भागने लगा। रत्नचूल उसके पीछे पडा। आखरको उसे पकड लिया।

आर्या.

अनुधर कुंजर जर्जर, केसरिसम रत्नचूलने करके।
पकडा अरि करिसम था, यदि आया नजर शशकसम उसके॥

शत्रुके स्वाधीन होनेपर अनुधरको बडा पश्चात्ताप हुआ। उसकी आंखे खुली। अपने छुटकारार्थ दीनवाणीसे रत्नचूलको प्रार्थना करने लगा। करुणाकी याचना करनेपर, यदि जन्मतः वैरी भी क्यों नहीं हो, सच्चे वीर उसपर क्षमा करते हैं। रत्न-चूल का क्रोध दूर होगया व उसने अनुधरको छोड दिया।

आर्या.

अरि यदि रणभूमीमें, आवे फिर शरण सुजन उपकार।
करते पदनत अनुधर, छोडा यदि दुष्ट करत अपकार॥

दुर्जन तो दुर्जन ही रहते है। जन्मतः उनका जो स्वभाव बनता है वह आजन्म नहीं छूटता। अनुधर को मुक्त करनेमे रत्नचूलने उदारता दिखलाई। अनुधर को उसका उपकार मानना चाहिये था; लेकिन ' दुष्टात्मा नैव भिद्यते! ' इस उक्तीके अनुसार अपना अपमान होनेपर भी उसको शर्म नहीं मालूम हुई. दुष्टोंपर कितनी ही दया क्यों न करें, निष्कपट भावसे व गाढ

भक्तीसे उनका कितना भी सन्मान रक्खें, दुर्जन उसका मोबदला अपकारमे ही दिखायंगे। इसी प्रकार रत्नचूलकी उदारतापर अनुधर क्षुब्ध हुआ। अपनेसे छोटे व सापत्न बंधूके चरणपर सिर झुकाकर उसको क्षमा की याचना उपस्थित उभय पक्षके सैन्यके सामने करना यह बडी शर्म की बात है इस विचारसे उसका संताप व द्वेषाग्नि बढने लगे। इस अपमान का बदला किस प्रकारसे लेना चाहिये इसका खेदाखिन्न चित्तसे विचार करने लगा। आखिरः—

ओवी

अनुधर वनमें जाके। मायाचारी तपस्या करके।
फणिपुर हद्दि छोडके। कौमुदीपुर आगया॥

कौमुदीपुर नामका एक नगर था। वहां तपस्वी का भेष धारण कर अनुधर रहने लगा, और जारण, उच्चाटन आदि कार्योंमें अपना सारा समय बिताने लगा। अर्थात् समान शीलके अनेक शिष्य एकत्र जमा हुए वे उसके पास रहने लगे।

ओवी.

कौमुदिपुरका नरनाथ। सुमुखाभिध विख्यात।
राज्य करता था शतस्त्री सहित। पट्टराणी थी रती॥

इसी कौमुदीपुरमें रत्नत्रयधारक, अट्ठाईस मूलगुण के पालक व आत्मध्यानमे तल्लीन दिगंबर मुनि रहते थे। इनपर रती राणी की गाढ श्रद्धा थी। वह उनके दर्शनार्थ जाकर नित्यशः उपदेशामृत का पान करती थी। जैनधर्मपर दृढ भक्ति होनेसे तदनुसार अपना वर्ताव रखती थी। पूर्व सुकृतोदयसे व मुनीके शुभाशिर्वाद से उस राणीको सौंदर्यगुणसम्पन्न कन्यारत्न प्राप्त हुआ।

इधर कौमुदीपुरमें तपस्वी अनुधर पंचाग्निसाधन करता था। कभी शरीर को भस्म लगाता हुआ, कभी जपमाला हाथमे धारण करता हुआ; कभी वृक्षपर उलटा लटकता हुआ वडे कठिण तपश्चरण करनेको ढोंग दिखाता था। उसके चेले भी उसके घोर तपश्चरण का डंका सारी जनता मे बजवाने के काम में हरहमेश तैयार रहते थे। जिसकी महिमा सुनकर हजारों लोग उसके पास इकट्ठे होते थे। राजा सुमुख के कर्णपथपर भी यह वार्ता गई अर्थात् अनुधरपर उसकी पक्की निष्ठा वैठ गई जिससे वह उसकी सेवामे सदैव तत्पर रहता था। उसको '**साधु वाक्यं प्रमाणं**' था। वह उस ढोगी तपस्वीका वचन पूर्वदिशा समझता था। तपस्वीके मुखसे शव्द निकलनेका अ[illegible]ाश कि वह अंधश्रद्वासे खाली नहीं जा[illegible] देता था और उस[illegible] [illegible]ज्ञापित कार्य रत्तिमात्र भी सारासार विचार न करके झट् पूर्ण [illegible]ता था। अपने पतीकी इसप्रकार बैठी हुई अंधश्रद्धा देख, सम्यक्त्वरत पतिनिष्ठ राणी वडी खेदखिन्न व उदास हो गई। प्राणनाथकी श्रद्धा यतिपरसे किस प्रकार हटाई जाय इसकी रात्रंदिन उसको चिंता लग गई।

"**गुरुभक्ती विन कुछ नहीं गुरुभक्ती सुखकारी**"

गुरुभक्तिवश आनंदसे फूले हुए राजाके मुखसे अपने गुरुके वारेमें भक्तीके उद्गार निकले; व प्रेमसे वातचित करता हुआ अपनी राणीसे कहने लगा, हृदयनिवासिनि, मेरे गुरुसरीखा इस जगतमें अन्य गुरु मिलना अत्यंत कठिन है। ऐसे '**निस्पृहस्य तृणं जगत्** समझनेवाले प्रातःस्मरणीय गुरुको तेरे हृदयमे निवास देकर

सत्यसुखप्राप्त्यर्थ अंतःकरणपूर्वक, दृढ भक्तीसे उसकी सेवा कर और मेरे साथ दर्शनको चल । उसके दर्शनमात्रसे ही तुझे संतोष होगा व इस संसारव्याधीसे परित्रास्त तेरे मनको क्षणमात्रमे शांति मिल जायगी ।

राणी सुशीला थी, पतीके वचनपर पूर्ण श्रद्धा थी; किंतु अनुचर तपस्वीके वारेमें उसका बिलकुल विश्वास नही था । पतीकी वैठी हुई भोलेभाली दृढश्रद्धापर उसको तीव्र दुःख होता था । पतीका वचन अमान्य करना यह आर्यस्त्रियोंका कर्तव्य नही है; किंतु मिथ्यात्वपर पूर्ण दृढ श्रद्धा करनेवाले प्राणपतीके वचन मान्य कर मिथ्याप्रवृत्तीमे सहयोग देना यह भी सुशील स्त्रियोंका कर्तव्य नहीं है । इसी न्यायसे रेवती राणी, साध्वी नीली व चेलना राणी आदिने अपने प्राणवल्लभोंके मिथ्यात्वसे परिप्लुत वचनोको अनुमोदन न देकर उनको सीधा सम्यक्त्वका मार्ग बतलाया एवं अपनाना किया । अपने पतीके अंतःकरणमे फैले हुए गाढ मिथ्यात्वांधःकारको अपने हृदयमें निवास करता हुआ सम्यक्त्व का उज्वल प्रकाश उसके आत्मप्रदेशोंमे फेककर–हटा देना यही साध्वियोंका परम कर्तव्य है । राणी इस उच्च कोटी की आर्यमहिला थी । " अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते, प्रवर्तयत्यन्यजनस्य निस्पृहः । " ऐसे सत्य गुरुका न " गुरवो बहवः सन्ति नारीवित्तापहारकाः । " ऐसे पाखंडीका लक्षण पूर्णतया जानती थी । पतीके वचनपर उसको हसी आई और विनयपूर्वक उत्तर में अनुचर के दर्शनका इन्कार किया ।

राजाने कारण पूछनेपर राणीने उत्तर दिया,

पद

जीवन के आधार तुम प्राणकांत नृपराज ! ।
सत्य वचन मैं कहत हूं, क्षमा करो महाराज ! ॥
अय नरपति प्यारे पतिजी ! ढोंगी साधु है वही ! ।
मैं तद्दर्शन कराती न कभी, ढोंगी साधु वही ! ॥ ध्रु ॥
कपट भेष धार नित्य महारंभ रखता है ।
देहपर ममत्व पूर्ण विषयमग्न होता है ।
वित्तकी वगादि सदा अभिलाषा करता है ।
रूपवती युवति नारि देख लुब्ध होता है ।
पंचाग्निसाधन नहीं ध्यान सत्य है पापि ।
अधम कुतप करता; न मैं तद्दशन को आति ॥
ढोंगी साधु है वही ॥ १ ॥

अहा हा ! कितना सुंदर उत्तर राणीने दिया ! एकही उत्तरमें उसने ढोंगी साधुका लक्षण बताया। किंतु जिसको जिस वस्तु अथवा व्यक्तीपर प्रेम वा भक्तिभाव होता है उसमें यदि सच्चे दोष बताये जाय तो वह दोष बतानेवाले व्यक्तीपर बडा कुपित हो जाता है। इस जगतके रीति रिवाज के अनुसार राजा राणीपर बडा क्षुब्ध हुआ और कहने लगाः—

दोहा.

महाज्ञानतपधारि है वंद्य मुझे यतिराज ॥
दोष दिखादो वा चलो तुम दर्शनको आज ॥

“ मेरे वंद्य तपस्वीको ढोंगी कहनेवाली पापिनी, तुझे उसके दोष सप्रमाण सिद्ध करने पडेंगे अथवा उसका शिष्यत्व स्वीकार करना होगा अन्यथा इसका नतीजा बुरा निकलेगा ! ”

राजाका यह क्रोधभरित वचन सुन राणी चित्र सरीखी स्तब्ध होगई। राजाके भोले हृदयपर साधुने डाला हुए जबर मोह मायाका पाश किस तरह दूर किया जाय इस चिताने उस के चित्त को घेर लिया। उस के सामने एक संकट उपस्थित हुआ। किंतु वह हिंमत हारनेवाली नहीं थी। धैर्य धारण कर शांत चित्तसे विचार करनेवाली रमणी थी। इतने में उसकी कन्या आगई जो बडी चतुर थी। माता का मुख म्लान देखकर वह चिंता का कारण पूछने लगी। मातासे उत्तर मिला:—

अजनीगीत.

कन्या चतुर महा; निज चिंता।
करत निवेदन है सब माता॥
युक्ति कहो कुछ करो मुक्तता।
संकटसे मेरी ! ॥ १॥

माताकी चिंताका सब हाल सुनकर और मातृभक्त चतुर कन्या उसके दुःख निवारण करनेकी युक्ति नहीं सोचेगी? माता को उसने धीर बधाया। उसने तपस्वी की ढोंग को प्रगटीकरणार्थ झट उपाय सोचा और बडी चतुराईसे माताका दुःख व पिताका भ्रम दूर करनेका इरादा किया।

नवविकसित गुलाब कलिकाके समान सुंदर उस कन्याने युवावस्था मे पदार्पण किया था। तप्तसुवर्णकांतीके समान उस का मोहक वर्ण था। कमल सरीखे उस के नेत्रद्वय से निकलने-वाली तिरछी नजर युवकोको मदनसे घायल करती थी। उस के दोनो कुच मानो ब्रह्मदेवने रखे हुए सुवर्ण कुंभके समान प्रतीत

स्त्रीने कहा, 'मुसमुसत है जानिजवानी मेरी ।
प्रेमालिंगन दीजिये । ' तो यतिने कहा, ' चुंवन तेरा ! '' ॥

यतिराज को अब स्वर्ग कुछ ऊंचा नहीं था । सुंदरी को दूरसे देखतेही उसके सारे शरीर में मदन का संचार हुआ था । अतः सुंदरीके राजीखुशीका संभाषण सुनकर इंद्रपदका ऐश्वर्य भी उसको तुच्छ प्रतीत होने लगा तो इसमे क्या आश्चर्य है ? अपनी मनःकामना पूर्तिनिदर्शक संमती मिलते ही वह कामसे धुंद हुआ और झट अपने हाथ फैलाकर उसको गाढ आलिंगन देनेके हेतुसे सुंदरीकी ओर झपटा । सुंदरी कुछ भोलीभाली नहीं थी । वह शीघ्र दूर होगई । यतिराज मदांध वन गये थे, स्त्री दूर होती हुई देखकर वह और निकट आने लगे ।

सुंदरीने यह सारा तमाशा अपने पिताजीका भ्रम दूर करने के लिये कुशाग्रबुद्धीसे रचा था । " तुह्मारे ऐसे कई यति-राज हमारी दासीके चरणो मे सिर झुकायेंगे ! " अपनी माताके मुखसे निकले हुए इस वाक्य की सत्यार्थता सिद्ध करने के लिये उसने दासीके घरमे राजाको गुप्त रीतिसे विठाया था ।

यतिराज तीव्र कामशरोंसे अत्यंत घायल हुए थे । उनको विवेक की कुछ भान नही रही थी । मदनशांतीके लिये सुंदरीके पूर्ण हस्तगत हो गये । " आप की मनःकामना मेरे घरपर एकांत स्थलमे पूर्ण हो जायगी ! " इसप्रकार मायावी वचन देकर उसने उसको दासी के घर लाया । राजकन्या झट् महल मे घुस गई ।

नयपथपर लाती कांतको धन्य नारी ॥
उस सतिसम दूजी मूर्ति ना पुण्यधारी ॥

सत्यकी सदैव विजय होती है। राजा जैनधर्म स्वीकार कर उसके मधुर स्वाद आस्वाद लेते हुए आनंदसे दिन विताने लगा। इधर,

आर्या

रत्नचूल नृपतीने, निज-नारी-अनुजसहित राज्य किया ॥
आखिर सयंम धारा, जगदुद्धारार्थ एक जन्म लिया ॥

पुण्यवान् प्राणीको आत्मोन्नतीके साथ साथ जगतके उद्धार करनेकी सुसंधि प्राप्त होती हे। रत्नचूल व उसके लघु भ्राताने अभयदान का पुण्य प्राप्त किया था। इसलिये आचार्य महाराज कहते हैः—

अभंग

अभयदान का है सत्य पुण्य भारी ॥
स्वर्गसौख्यकारी कहत जैनवाणी ॥
वैश्यपुत्र दोनों यही दान देके ॥
स्वर्ग संपदाके नाथ भये आखिर ॥
क्षेमंकर राजा राणी थी विमला।
महा पुण्यशीला सिद्धार्थपुरीकी ॥
देश-कुल-विभूषण हुए पुण्यधारी ॥
कर्मशक्तिहारी पुत्र दो उन्हीं के ॥

चतुर्थ परिच्छेद समाप्त

प्रथम भाग संपूर्ण.

रत्नचूल व चित्रचूल इन दो राजपुत्रोंने—जो पहिले वैश्यपुत्र, तत्पश्चात् मंत्रिपुत्र थे—यथाकाल समाधिमरण के बाद स्वर्गमें देवेंद्रके ऐश्वर्य भोगकर तथा वहां के आयुष्य पूर्ण कर इसी पुण्यशील राणी के उदरसे मंगल मुहूर्तपर जन्म लिया। इसी लिये आज सिद्धार्थ नगरीका अपूर्व शृंगार किया था।

साकी

क्षेमंकर नृप मुदित हुआ, फिर सुतजन्मोत्सव भारी।
किया; दिया अति दान, मुदित बहु हुए नगरनरनारी॥
पुण्यवंतको त्रिभुवन-मन-हर होती सुतकी प्राप्ति।
धर्म धारकर पुण्य कमाओ! फैलेगी सत्कीर्ति॥

पुण्यवान प्राणियोंका जन्म किसको आनंदकारक नहीं होता? यही तद्भवमोक्षगामी दो श्रेष्ठ जीव चरित्रनायक हैं, जिनके जन्मसे सिध्दार्थ नगरी ही क्या सारी पृथ्वी आनंदमग्न हुई थी इस समय सर्व दिशाओंमे अपूर्व तेज झलकता था। मंदमंद वायुकी लहरें नगरीके नरनारीयोंका हर्ष द्विगुणित करती थी। क्षेमंकर राजाने पुत्राजन्मोत्सव मनाया। अनेक दीन अनाथोंको अन्न, वस्त्र व द्रव्य, दानसे संतुष्ट किया। बंदिवानोंको बंदिगृहसे मुक्त किया। जिनमंदिर में भक्तिभाव व थाटमाटसे दररोज जिनपूजन होने लगा इस प्रकार दस ग्यारह दिन उस नगरीमें आनंद ही आनंद रह बारहवे दिन नामकरणविधी के लिये सारी जनता एकत्रित हुई व बडे हर्षसे दोनों ज्येष्ठ व कनिष्ठ राजपुत्रोंका नाम क्रमशः '**कुलभूषण व देशभूषण**' रखा। बालकोंको झूलेमें झुलाते समय बडी प्यारसे उनका गुणगान करने लगे।

तुम दोनोंका जन्म होते ही यश का सुगंध के सर्व दिशामे फैलना कुछ आश्चर्य की वात नही है। क्यो कि तुम दोनों मे जो पूर्व जन्ममें सत्कृत्य कर पुण्य कमाया था उसी का फल कस्तूरी व चंदन के समान यश सौरभ आपको इस जन्म में निसर्गतः प्राप्त हुआ। अतः

यशसौरभ तुमरा। जन्म लिया,। साथ जन्म के आया॥
दिङ्मंडल जिससे॥ व्याप्त हुआ॥ मंगलमय सुदिन किया!॥
गुण कितने भाई॥ अव तुमरे॥ गाना प्राण सितारे॥
सुखसे सो जाओ॥ घर जाते॥ अव 'वालसुत' तुम्हारे॥

'नाम आनंदी और सदा म्लानमुखी' इस प्रकार राजपुत्रोका नाम निरर्थक नही था। 'यथा नाम तथा गुणाः।' वह अन्वर्थक था। उन्होने आत्मोन्नति के साथ २ जगतका उद्धार कर अपने मातापिता के कुलको किस प्रकार भूषित किया यह आगेके आश्चर्यकारक चरित्रसे विदित होगा। अस्तु।

शुक्लपक्ष के चंद्रमा के समान दिन प्रतिदिन दोनों वालक जव वृद्धिगत होने लगे तव अपनी वाललीलाएं व गुण आदि से मातापिता तथा शहरवासियों को हर्षित करने लगे। कुछ दिन के वाद,

आर्या.

द्वादश वर्ष उमर जव, था भेजे राजकुंवर गुरुकुलको॥
विद्याभ्यास कराने, विद्वद्गुरुपास एक शुभ दिन को॥

कौमुदीपुरके विख्यात विद्यालय मे सिद्धसागर गुरुजी के पास राजपुत्रोंको विद्याभ्यासार्थ भेजा। दोनों कुमारोंकी वुद्धी तीव्र थी।

आर्या

अधिकार-सुगुण वैभव, सुपुण्यसे प्राप्त होगया; उसका।
स्वागत नहिं करता जो, असंज्ञि पशुतुल्य मोल है उसका॥

सिद्धार्थ नगरीमे ऐसा कोई असंज्ञी नही था। क्योंकि—

गजल.

नागरीक कुमारका स्वागत हैं करते हर्षसे।
इन्द्रनगरी सम सजाते निज नगर हैं हर्षसे॥ ध्रु॥
राजपथपर कस्तुरी, केशर सुगंधित छिडकते।
दीपशतसे सदन निज भूषित हैं करते हर्षसे॥ १॥
पुष्पमाला सुपारमलयुत हैं लगाते द्वारपर।
वाद्य मधुर बजाय गाते हैं कुंवर-गुण हर्षसे॥ २॥

इस प्रकार नगरवासी जन राजपुत्रोंको उत्तुंग मतंगजपर बिठाकर बडे ठाटवाटसे शहरमे ला रहे हैं। आगे स्तुतिपाठक जोरशोरसे गुणगान कर रहे है। वाद्यों के कोलाहलसे सारा दिङ्मंडल गूंज रहा है। अंतःकरणमे तीव्र उत्साह होनेके कारण स्त्रीपुरुषोंकी भीड अत्यंत उत्कंठासे कुमारोको देखनेके लिये दौडकर आरही है। और:—

पद. (सबसे राग भजन)

सबसे राजकुंवर को देख नगरकी स्त्रियां हुई बेभान !॥ध्रु॥
केशविरचना करती थी कोइ छोडा है झट काम।
मनमाने उडते थे कुंतल पीछे नांहिं थ. भान !॥ १॥
अर्धवसन था तनपर लेकिन स्नानरता कोई भागि।
कहत कुपित पति "शरम छांडरी! रांड! नहीं क्यों भान॥
परोसते कोइ पतिको देते बालकको स्तनपान।
भागि गिरी मेखला, ओढनी न है किसी को भान !॥३॥

इस प्रकार कुमारोंके दर्शनकी अभिलाषासे नारियोंकी अत्यन्त त्रेधा हो गई । उसी समय.—

ओवी

कोई करती थी आरती । नीवू उतार फेंक देती ।
करती थी सुरभि प्रसून वृष्टि । उनपरसे सोत्कंठसे ॥
नृपराज्ञीके वका । करती थी वर्णन भाग्यका ।
गुण गाती थी कुमारोंका । कोई नारि प्रेमसे ॥

कोई नारी कुमारोंकी आरती करती थी, कोई उनको किसींकी दुष्ट नजर न लग जाय इस कल्पनासे नींबू उतारकर फेक देती थी, कोई राणीके वैभवका वर्णन करनेमे व कुमारोंके गुणगानमें मग्न हुई थी ।

इस प्रकार अपने स्वागत के निमित नागरिकोने उत्साह से किये हुए उत्सव व शहरकी अवर्णनीय शोभा देखते देखते वे दोनो चले थे । आखिर —

दिंडी

स्वारियां फिर फिरते नगर कुंवरकी ।
नृपनिमादिरपर आइ. दृष्टि फेंकी ।
खडी थी छतपर युवति रतिसमान ।
हृदयको वींधा, देख, मदनवाण ।

राजकुमारो की स्वारिया राजमहलके निकट आई । सामने महलके छज्जेपर अप्सरा को भी लजानेवाली सुंदर तरुणी कुमारोंका होता हुआ स्वागत देखने की अभिलाषासे खडी थी । कुल-भूषण की नजर उसपर गई व देखते ही वह कामव्यामोह से निश्चेष्ट हुआ ।

पद.

(रागः—जीवन पुरी, त्रिवट.)

देख भूला पूर्ण मन में रमणी ।

रूप-सुगुण-खाणा ! ॥ धृ० ॥

स्मरसे त्रस्त हृदयी । बेचैन भारी ॥ सुधबुध बिसरी ॥ १

कामशर से विशीर्ण हुआ उसका शरीर कांपने लगा; बेहोश होकर मद्यपी के समान वह बडबड करने लगा। कुल-भूषण की यह विकट परिस्थिति देख कनिष्ट बंधु, देशभूषण दुःखाकुल होकर कहने लगा।

आर्या

रे ! भ्रात ! क्यों पडा है, विभ्रम में ? सूझना न है मुझको ॥
आनंदसौख्य में था निमग्न, वह. क्या हुआ है अब तुझको ? ॥

"प्यारे भाई, तेरी इस प्रकार ऐसी विचित्र दशा क्यों हुई ? अभी तक तेरा हृदयसागर उछलती हुई आनंदकी लहरोंसे पूर्ण भरा हुआ, था; अकस्मात् ऐसा कोनसा महाशोक का वडवानल उत्पन्न हुआ जिस से तेरा यह हृदयसमुद्र क्षणमात्रमे शुष्क होगया ? कोई पापी दुरात्माकी नजर तो नही लगी ? क्या, किसी दुष्ट ने तो तेरा अपमान नहीं किया ? मुझे नाम मालूम हो जायगा तो एक पलक मे उसको मैं अपने भुजबलसे यमराजका दरवार दिखाऊंगा! क्यों! चुप क्यों? आजतक तूने मेरेसे कोई भी बात छिपाकर नहीं रखी। फिर आज ऐसा मौन धारण क्यों किया? तेरे दुःख-निवारणार्थ मैं अपने प्राण न्योछावर करनेके लिये तैयार हूं! बोल! प्यारे भाई, बोल ! ! "

"लेकिन मैं हू कहां ?" शराबी समान कुलभूषणने प्रश्न किया।

देशभूषण आश्चर्यचकित होकर भयभीतस्वरसे पूछने लगा, "भाई, तू मेरे निकट होते हुए मुझे पागलकेसमान क्या प्रश्न कर रहा है? तुझे कोई पिशाचबाधा तो नहीं हुई?"

"मुझे पिशाचबाधा?" कुलभूषण उत्तरमें कहने लगा, "नहीं, मुझे किसी की बाधा नहीं हुई! मैं पूर्ण सावधान हूं।"

आर्या

"बदजरती, सुरयुवती, गगनसुधासूतिनी, सुरूपवती।
देखो," अग्रज बोला. "मन्मनको लुब्ध है अहा करती!"॥

"देख, सामने छज्जेपर खड़ी हुई, तारागणोंमे परिवेष्टित चंद्रमाके समान तरुणी अपने नेत्रकटाक्षसे तीव्र कामशर फेंककर मुझ त्रस्त कर रही है। हाथमें पंचारती लेकर मंद मंद हास्यसे मेरी भार्या पट्टराणी बनने के लिये इशारा कर रही है! भावी कालमें यह मेरी भोजाई बनेगी!"

कामाय तस्मै नमः' काम बडा विचित्र है। देशभूषण की नजर ऊपर भिडते ही तरुणीके सौंदर्यमें उसका मन मदनका गुलाम बन गया। कुलभूषणने अपने कनिष्ट भ्राताकी भार्यापर पापी वासना प्रगट करना यह कितना घोर पातक है इस विचारसे देशभूषण के मनमें क्रोधका पारा चढ गया। उसकी आंखे लाल हो गई। संताप के मारे सारे शरीरमें कंप उत्पन्न हुआ। छोटे भाईकी स्त्रीपर पापी कामनापूर्तीकी तीव्र अभिलाषा प्रगट करनेवाले पापात्मा भाईका क्या करना चाहिये इस कोपयुक्त विचारसे वह किंकर्तव्यमूढ बन गया। अंतःकरणमें वारंवार

क्रोधकी लहरें उछल जानेसे वह आंखे फाड फाड कर अपने भाईकी तरफ देखते हुए कहने लगा, "धिक्कार है तेरी विद्वत्ता-को ! मैं तेरा कनिष्ठ भ्राता और मेरी भार्या तुझे कन्यासमान, गज शास्त्रकी नीति मालूम होते हुए भी तू इसपर पापी नजर रखता है ? धिक्कार है तेरी निर्लज्जताको ! अभी भी विवेक जागृत कर ! नहीं तो तुझे स्वर्गका रास्ता दिखाऊंगा ! "

" क्या मै निर्लज्ज ? " देशभूषण का अनिवार क्रोध देख-कर उपहासास्पद हास्य प्रगट करते हुए कुलभूषण ने उत्तर दिया; व आगे बोला, "भाई, इस तरुणीको तेरे पहिले मैने देखा है और मेरे मनका संदेश आया हुआ जानकर वह सुंदरी मंद हास्य व नेत्रसंकेतसे मेरी स्त्री होनेके लिये कभी का इशारा दे चुकी है। तू भी मेरे समान विद्वान हो चुका है। मेरी स्त्री तुझे मातासमान है। क्या यह बात तुझे परिचित नहीं है ? फिर बोल: क्या, मैं निर्लज्ज ? नहीं ! मेरी स्त्री की अभिलाषा करनेवाला तू बेशरम ! धिक्कार है तेरे जन्मको !! " सारांश:—

दिंडी.

चाहते थे उभयभी वही कांता।
तीव्र उनको स्मर दुःख था सताता।
न बंधुद्वय में प्रेम बने वैरी।
मदनका देखो है प्रताप भारी ॥

दोनोंही राजपुत्र तरुण थे अपना भावी संसार आनंदमय व सुशोभनीय बनानेके लिये दोनों एकही युवतीको चाहते थे। दोनोंके अंतःकरण में कामकी तीव्र अग्नि प्रज्वलित होनेसे परस्परका

बंधुप्रेमकी लता भस्म हुई, विद्वत्ता खाक हो गई व सारा विवेक जल गया। कामका गुलाम कौन नहीं हुआ है? बडे बडे योगिराज भी इससे छुटकारा नहीं पाये है तो औरोंकी क्या बात?

कव्वाली.

कहता है एक, "चाहति है दिलसे यह मुझे!।
वेदिल कटाक्ष नेत्रका करती है यह मुझे! ॥ घृ. ॥
कुरवान जान मेरि करूं प्यारिजानके वास्ते।
इष्कसे प्यारा कोइ दूजा न है मुझे"! ॥ १ ॥
दूसरा कहता है, "नीच! पापि! रे नराधम! तू।
पापि तव वचन न सहे जात है मुझे! ॥ २ ॥
तरवार के इक वार से यमराज के घर भेजूंगा!।
नारि मेरि नारि का मैं! डर न फिर मुझे!!" ॥ ३ ॥

आखिर यह प्रकरण बढ गया. दोनो भाई वीर थे दोनों योद्धा थे, दोनो समशेर वहादुर थे, दोनो भी दृढवय्ये थे, कोई किसीसे कम शक्तिधारी न था, कोई भी किसीसे हार जानेवाला नहीं था और दोनों परस्पर को पापात्मा समझते थे इसलिये दोनों भी परस्पर की जान लेनेके लिये उद्युक्त हुए। जो बचेगा वही तरुणीके साथ शादी करेगा इस शर्तसे परस्परने म्यानसे तलवार निकाली व हाथीसे नीचे कूद पडे!

'कामाय तस्मै नमः!' अरे मदन, धन्य है तेरी लीला!!

प्रथम परिच्छेद समाप्त.

—x—x—

द्वितीय परिच्छेद.

क्या, यह हमारी बाहिन ?

जगतको प्रकाशित करनेवाला तेजस्वी सूर्य राहुग्रस्त हो जाने के कारण तेजहीन हो जाय, सुंदर नवविकसित पुष्प लतासे अलग हो जानेके कारण सूख जाय, अथवा स्वच्छ दीखता हुआ निरभ्र आकाश, अकस्मात् अभ्राच्छादित होनेके कारण उसपर कृष्ण छटा छाजाय उसीप्रकार कुमारोके शुभागमनसे झलकता हुआ सिद्धार्थ नगरीका अपूर्व तेज एकदम नष्ट हुआ। जनताके आनंदातिशयसे प्रफुल्लित मुख म्लान व काले दीखने लगे। सारी जनतामे हाहाकार मच गया ! !

कारण वह दोनों राजपुत्र हाथीपरसे नीचे कूदतेही बडे जोरसे लडने लगे। उनमे तुमुल युद्ध हुआ। परस्परके शरीरपर जखमें होनेसे रक्तधारा बहने लगी। लोक आश्चर्यचकित हो गये। अकस्मात् युद्ध क्यो हो रहा है किसीके समझमे नहीं आया। क्षणमात्रम इस युद्धका नतीजा किसी एकके बलिदानमे होगा ऐसा अंदेशा लोगोको आने लगा किंतु मध्यस्थ होकर युद्ध बंद करनेके लिये कोन आगे बढे ! सब दिङ्मूढ बनकर जडचित्रके समान खडे रह गये। आखिर क्षेमकर राजाका निमकहलाल, धैर्यवान एक वृद्ध प्रधान अपने प्राणोकी पर्वा छोडकर बडे धैर्यसे दोनोंके बीचमे आकूदा व जोरसे चिल्लाकर बोला:—

शार्दूलविक्रीडित.

हां ! खामोष रहो जरा मिनिटभर शस्त्रास्त्रको शीघ्र तुम् ।
रोको ! दूर विवेक कर झगडते क्यो हो फिजुल आज तुम ? ॥
पृथ्वी रक्तमयी हुई समझमें आता नही हाय हा ! ।
ऐसी आपसमें शरारत कहो क्यों व्यर्थ की है महा ? ॥

" राजपुत्रो, अब मेरे प्यारे वीरो, तुम यह क्या अविचार कर रहे हो ? आपसमें युद्ध करनेसे तुम्हे क्या लाभ हो रहा है ? प्राणहानिके सिवाय किसीको क्या प्राप्त होगा ? तुम्हारे राजपदका, तुम्हारे राजकुलका और तुम्हारे सारे उज्ज्वल यशका कितना भयंकर नाश है इसकी तुम्हे क्या लेशमात्र भी कल्पना नहीं है ? प्रजाका क्षेम चाहनेवाले, न्यायनीतीमे सदैव दक्ष रहनेवाले व पुत्रोंके दुःखनिवारणार्थ प्राण न्योछावर करनेवाले तुम्हारे परमपूज्य पिता क्षेमंकर महाराज इस सिद्धार्थनगरीके शासक होते हुए तुमने ऐसा कौनसा महान अपराध किया कि उसका न्याय देनेंमे वह सर्वथा असमर्थ है ? आजतक तुम्हारा परस्परमें कितना प्रेम था, परस्पर कितने प्यारसे रहते थे, परस्पर की एकदिली थी. लेकिन वह आज अकस्मात् किस कारण से नष्ट हुई ? कहो मुझे कहने मे कुछ संकोच न करो ! जो कुछ होगा, मैं राजासे विदित करूंगा । यह नगरी तुम्हारे स्वागतोत्सवके आनंदार्णव मे अभीतक डूब रही थी, किंतु क्षणमात्र मे सूख जाने से दुःखके तापसे देखो कैसी तडफ रही है । तुम धीमान् हो, न्यायके विद्वान् हो व नीतीके जानकार हो । तुम्हारा अंतःकरण विवेक से

भरा हुआ है व रोमरोम में दया खेलती है। मेरा कहना मानो, शस्त्रास्त्र फेंको और तुम्हारी इस जनतापर दया करो।

प्रधानजीके अंत:करणसे निकले हुए एक एक शब्दका असर हर एक के दिलपर होता था; परंतु काम से अंध, युद्धमद से मदांध राजपुत्रोंके दिलपर उसका कुछ भी परिणाम नहीं हुआ। मंत्री के प्रार्थनापर उन्होने ध्यान ही नही दिया। मध्यस्थ होकर अपने अमूल्य वक्तको खराब करनेवाले मंत्रीकी तरफ वह क्रोधसे दौडते आये व अपमानकारक शब्दोमे उससे कहने लगे, " रे जरठ, जरा दूर हो जा! बीचमें आनेका तेरा कुछ भी प्रयोजन नही है। हमारा कहना न मानेगा तो नाहक अपनी जान खो बैठेगा! यह हमारी तरवारे परस्पर का खून पनिके लिये अत्यंत तृषातुर हुई है। इसवक्त हमारा युद्ध स्थगित करनेके लिये कोई भी समर्थ नहीं है। हमारे युद्ध का कारण न कोई जान सकता न हम किसीको कह सकते और यदि कहा तो कोई भी इस का न्याय नहीं दे सकता। चल, हठ जा! तेरा कहना हम कुछ भी नहीं मानेगे!

राजपुत्रोंका निश्चययुक्त भाषण सुन प्रधान किंकर्तव्यमूढ बन गया। इसकेलिये क्या करना चाहिये इस विचारसे बहुत देर-तक तन्मय होकर एकही जगह वह स्तब्ध खडा हुआ। समय अत्यंत कठिन था। परस्परका खून करनेके लिये दोनों भी जोश में थे। इस समय किसी एकका बलिदान हुए बिना न रहेगा ऐसी प्रधान की खात्री हुई। प्रधान स्वामिनिष्ठ था। निजनेत्रोंके समक्ष

राजपुत्रोंका प्राणहरण देखनेके लिये वह बिलकुल असमर्थ था। बीचमें होकर उनके सामने उसने अपना सिर झुकाया और बोला " कुमारो! यदि तुम्हें मेरा कहना नहीं मानना है, अविवेकसे अपना हठ पूर्ण करनेका तुमने अगर निश्चय किया है तो प्रथम मेरा सिर इस देहसे अलग करो व मेरे प्राण यमराज के हाथ सुपुर्द कर दो ताकि तुम्हारा यह दुष्कृत्य मुझे अपनी आंखोसे देखना न पडे।

प्रधानजीका यह निश्चयपूर्ण भाषण सुनकर राजपुत्र स्तब्ध हुए। उन्होंने अपनी समशेर रोकली। थोडासा विवेक धारण किया और किंचित् शांत होकर कहने लगे, " प्रधानजी, वास्तवमे आपको युद्ध का सत्यकारण कहनेमे हम कुछ फायदा हासिल नहीं होगा। राज्य वा द्रव्यप्राप्तिके लिये हम युद्ध नहीं करते। हम अपने प्रेमके खातिर अन्य वस्तुके लिये चाहे जितना स्वार्थत्याग करेंगे, मगर जिसके लिये आज हमने इतना कोलाहल मचाया है वह चीज ही कुछ न्यारी है। इसके लिये हम अपने प्राण धारातीर्थपर रखनेके लिये तयार है। जो बचेगा वही उस वस्तुका मालिक बनेगा हमारे प्रात:स्मरणीय पूज्यपिताजीने उस का त्याग करनेके लिये कहा तो भी हम उनकी आज्ञा शिरसावंद्य नहीं समझेंगे। फिर आप की मध्यस्थी वा न्यायदान का हमारेपर कितना असर होगा यह आपही खुद समझ सकते हैं। हमारी शरारत अनिवार्य है। चलो हट जाओ, हमे युद्ध करने दो।"

" The whole world fights for gold and wife "
प्रधानजी ने एकदम उत्तर दिया वह आगे बोला, " जगत्, कनक व कांताके लिये झगडता है। तुम्हे न राजपद की आशा है न द्रव्यकी। अर्थात् जिस वस्तुकी तुम स्पृहा कर रहे हो वह खास मानव जातीकी सुंदर चीज होगी। किसी तरुणी को देखकर तुम दोनों मुग्ध तो नहीं हुए ? "

प्रधान वृद्ध एवं अनुभवी था। राजपुत्रोंका हेतु उसने शीघ्र जान लिया। कोई न कहते हुए अपना हेतु प्रधानजी को कैसे अवगत हुआ इसका उनको बडा आश्चर्य मालूम होने लगा। संसारसे अपरिचित नवतरुण को ऐसा ही होता है, इस में कोई आश्चर्य वा अतिशयोक्ति की बात नही है। राजकुमार साश्चर्य वदन से कहने लगे, " प्रधानजी, आपने हमारे अंतरंगको जान लिया। हम विद्वान् और पराक्रमी है। द्रव्यलालसा अथवा राज-पदकी आकांक्षा धारण कर उसकी पूर्तीके हेतुसे हम परस्पर में युद्ध कभी नहीं करेंगे। इस जगत में किसी का भी सिंहासन, इतनाही नहीं देवेंद्रका भी इंद्रपद हम अपने भुजबल से हस्तगत कर सकते है ! क्योंकि,

साकी.

शूर, वीर, रणधीर न हमसे, कोई युद्ध करेगा ॥
सतेज दृष्टी देख न शचिपति, पलभर भी ठहरेगा ॥
अजिंक्य बलधारी ! प्रबलशत्रुमदहारी ॥ १ ॥

" ऐहिक विभूति अथवा ऐश्वर्यके लिये हम अपना जीवित क्यो नष्ट करेंगे ? इस पृथ्वीतल में जिसपर हमारा सारा सुख

अवलंबित है, जिसके आधारपर यह सारा जगत चलता है, जो विद्युच्छक्ति के समान मानवजातीके जीवन को तेजोमय बना देती है, उस—केवल संसारकी सारभूत हृदयहारिणी रमणीरत्न के लिये हमारा यह कलह चल रहा है। लेकिन दुर्दैव है कि इस प्रकारका स्त्रीरत्न इस महीतलपर, एक ही है जिसके प्राप्त्यर्थ दोनोमे तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई है। उस तरुणीके चरणोंपर हमने अपना सारा तनमन अर्पण किया है। उस के लाभालाभ में हमारा जीवित व मरण अवलंबित है। चाहे जैसा अकथनीय व अखड प्रयत्न करेंगे, वीर साहस से आकाशमे पाताल मिला देंगे, उसकी प्राप्ति किये बिना हमारी शांति नहीं होगी। दोनोंका एक ही स्त्रीपर प्रेम है। अत. दोनों का जीवित होते हुए किसी एक को प्राप्ति होना दूसरे के लिये भयंकर अपमान है। ' A brave prefers death to insult ! ' हम क्षत्रियपुत्र होनेसे अपमान को कभी नहीं सहन करेंगे। प्रधानजी, आप हट जाओ, हमारा समय खराब मत करो, हमारा खड्ग ही अब हमारे युद्धका अंत करेगा।

कुमारों के भाषणपर प्रधानजी को हंसी आई। उत्तर मे वह कहने लगे, " पुत्रो, तुम्हारे इस अविवेकतापर मुझे दया आती है। तुम्हारे इस युद्धमे कुछ सार नहीं है। तुम विद्वान् हो, तो भी तुम्हारी नवयुवकता व कामान्धता ने तुमको व्यवहारज्ञान व सारासार विचारसे वंचित किया है। इसलिये तुम्हारी मूर्खता लोगोंके सामने प्रगट हो रही है। जिसपर तुम्हारा प्रेम है वह तरुणी तो

मुझे बताओ ! तुम दोनों उसपर प्रेम करते हो, तुम दोनों भी मोहित होकर उसके प्राप्तिकी अभिलाषा रखते हो, किंतु उस युवतीका तुम दोनोंपर प्रेम होना सर्वथा असंभवनीय है। यह किसी एकपर ही प्रेम करती होगी। तुम्हारे दोनोंकी वह कदापि अभिलाषा नहीं करेगी। जिसे चाहेगी उसके गलेमे वह वरमाला डालेगी। उसको पूछनेसे तुम्हारा झगडा मिट जायगा। यह सादा मार्ग छोडकर मूर्खोंके समान लडना तुम्हारे लिये कितना लज्जास्पद है? कहां है वह तरुणी ? चलो, बताओ; हम उसको पूछेंगे ! ”

प्रधानजी के इस सयुक्तिक भाषणसे दोनोंही कुमार लज्जित हुए। अपनी अविवेकता उनके नजर आई। दोनो भाई अपनी प्रियतरुणीके बताने के लिये उद्युक्त हुए ! राजमहलके छज्जेकी तरफ अपनी अंगुली उठाकर दिखाने लगे। छज्जेपर स्त्रीसमूहकी अत्यत भीड थी। मंत्रीने सभी स्त्रियोंकी तरफ एकबार दृष्टी फेकी व कुमारोसे बोला, “तुम पागल तो नही हुए हो? तुम्हारे लिए तुम्हारे रूपगणानुरूप इस स्त्रीगण मे ही क्या लेकिन सारे साम्राज्य मे भी सुंदर नारी नहीं मिलेगी। यौवनमदसे तुम उल्टू बन गये है। जरा धैर्य धारण करो ! क्षेमंकर महाराज तुम्हारे विवाहके लिए आतुर है। अप्सराको भी लजानेवाली देशदेशांतरकी एकसे एक सुंदर कन्याएं तुम्हारे चरणपर आगिरेगी. उस वक्त वर्तमान अविवेकका तुमको अवश्य ही पश्चात्ताप हो जायगा। तुम्हारे रूपगुण को तुलनात्मक एक

भी रमणी इस छज्जेपर खडी नहीं है । युद्ध बंद करो, शस्त्रास्त्र फेंक दो ! "

कुलभूषण हसकर बोला, " बुढ्ढे, हम तरुण और तू जरठ, ' अंगं गलितं पलितं मुण्डं ' ' दशनविहीनं जातं तुण्डं ' इस प्रकार तेरी अवस्था, तुझे अब तरुणीकी क्या पारख ?.... ' Love is Blind ' मैं जिस स्त्रीको चाहता हूं, चाहे वह कैसी भी हो, मुझे अत्यंत प्रियतम है । तेरे सरीखे जरठ को उसकी क्या कीमत ?

पद

चालः—राधे कृष्ण बोल०

चाहता हुं नारि दिलसे । चाहता हुं नारि ।
मेरी जानसे है प्यारी ॥ ध्रु० ॥
रूप देख इंद्र इसका । भूल जायगा सुरग का ॥
लाभ ना मुझे युवतिका । जान ना रहेगी मेरी ॥१॥

' पीतवस्त्र परिधान कर, हाथमे पचारती लेकर खडी हुई स्त्री, अहाहा ! कितनी सुंदर दीखती है ' उसकी प्राप्तिके लिए सारा राजवैभव छोडने में मुझे रचमात्र भी रंज नहीं होगा । मेरी इच्छामे बाधा डालनेवाले मेरे छोटे भाईका जीवित हरण करनेमे मुझे लेशमात्र भी दिक्कत नहीं मालूम पडेगी । उस प्राणप्यारी परसे मै अपने प्राण न्योछावर करूंगा । लेकिन उसकी प्राप्ति किये बिना न रहूंगा । क्या, अभीतक मेरी प्राणप्रिया तेरी नजर मे नहीं आई ? "

मंत्रीजीने छज्जेपर देखा। कुमारोंकी प्यारी कुमारी देखते ही वह चकित, स्तिमित व स्तम्भित हुआ। वह दिङ्मूढ होकर क्षण-मात्र पागलसरीखा बन गया। राजकुमारोंकी तरफ उसने सक्रोध दृष्टि फेंकी। इस वक्त वह सेव्यसेवक का नाता भूल गया; और आश्चर्य से कुमारोंसे पूछने लगा, " क्या, पीतवस्त्र पहनी हुई रमणीपर ही तुम आशक हो ? "

" हां हां उसी स्त्रीने हमारा हृदयराज्य अंकित किया है !" कुमारोंने आवेशमे आकर उत्तर दिया।

कुछ देरतक प्रधानजी चुपचाप होगये। और अपने दिलकी खात्री करनेके हेतुसे और एक वक्त वह स्त्री बतानेके लिए उसने कुमारोंसे पृच्छा की।

मंत्रीके इस पूछाताछीसे कुमार चिड गये व असभ्य शब्दोंसे कहने लगे, " पागल, तू अब वृद्ध हुआ है। तेरी दृष्टी निस्तेज होनेसे पराई वस्तु देखने मे अब थोडी कठिनाई मालुम हो रही है। सूर्यकांतीसमान तेजस्वी, तप्तकंचनसमान रूपसंपन्ना, मृगनयनी अभीतक तूने नहीं देखी ? "

कव्वाली.

रतिसमान रूपवती युवति क्या नहीं देखी ?।
फुल्लपुष्पके समान नाजुक तनु है जिसकी ? ॥ ध्रु. ॥
घनसमान कृष्णवर्ण अलकभार उडता है।
चपलासम चपल हास्य करत है न क्या देखी ! ॥ १ ॥
चंद्रकिरणधौतनिशाकंठमें मानों तारा।
रत्नहार छातिपे क्या वह रमणी नहीं देखी ? ॥ २ ॥

सदाचरण निर्मित निजनिर्मल यशकी उज्ज्वलतासे अन्य राज्यशासनको लजानेवाली यह सिद्धार्थनगरी अपनी कीर्ति को धब्बा लगानेवाले तुम जेसे कुपुत्रोका आज धिक्कार कर रही है। प्रसिद्ध गुरुकुलमे रहकर विद्वान् गुरुके पास तुमको सकलशास्त्रपारंगत किया और तुमने अपनी विद्वत्ताकी ज्योति आज यहां पापाचरणमें चमकाई। ऐसे दुराचारी अधमोका मुखावलोखन करने के पहिले ही मै अंधा क्यों नहीं हुआ ? तुम्हारा दुष्कृत्य ही तुम्हारे पापका फल देहदंडमे देता था लेकिन तुमको युद्धसे परावृत्त करने की मुझ पापीको, दुर्बुद्धि प्राप्त हुई यह सिद्धार्थनगरीका दुर्भाग्योदय नहीं तो क्या ? कहां तुम्हारा उच्चकुल और कहां तुम्हारी नीच कृति ! कहा तुम्हारे पिताजी का सदाचरण और कहा तुम्हारा दुराचरण ! कहा तुम्हारी विमला माताकी विमलकीर्ति और कहा उसीके विमलोदरसे पैदा हुए तुम जैसे कुपुत्रोंकी नीचवृत्ति से फैली हुई नीच ख्याति। इस जगतके व्यभिचारी पराई स्त्रीसे अपनी पापी कामना पूर्ण करते है; किंतु राजपुत्रों, देखो, वह भी—अपनी सहोदरीपर कामवासना प्रगट करनेवाले तुम नरपिशाचोंको देखकर तुम्हे कैसे शरमा रहे है। धिक्कार ! धिक्कार है तुम्हारी इस कामुकता को !!

सोहनी, दादरा.

धिक् तुमरी। कामुकता । धिक् तुमरी।
सत्कीर्ती सकल हरी;।
शीलभ्रष्ट, नष्ट, दुष्ट छांडी शरम क्यों सारी ? ॥धृ॥

तृतीय परिच्छेद.

कुमारोंका अनुताप व प्रधानजी का उपदेश.

" क्या, यह हमारी बहिन है ? " राजपुत्रोंने दुबारा प्रश्न किया।

हां ! हां ! यह तुम्हारी बहिन है ! प्रधानजीने खडी आवाज से उत्तर दिया।

राजकुमार शूर थे, वीर थे, धैर्यशाली थे। आजतक स्वप्नमें भी उन्हे भय शब्द मालूम नहीं था। पृथ्वी पर उल्कापात अथवा भूमिकंप होता तो भी उस महान् संकटको तुच्छ समझकर निडर छातीसे मुकाबला कर देते। लेशमात्र उन्हे भीति मालूम नहीं होती। किंतु प्रधानजी के मुखसे " बहिन " शब्द सुनतेही उनके अंतःकरणमें भय उत्पन्न हुआ। निज अविवेक का उनको अत्यंत पश्चात्ताप होने लगा। मस्तकपर वज्रपात हुआ जैसा मालूम होने लगा। निज भगिनीपर आशक्त होना व उसके लिये अविचारसे लोगोंके सामने लढना यह कितनी शरम की बात है ! शरम के मारे उन्होंने अपना मस्तक नीचे झुकाया। मांत्रिकको दंश करनेके हेतुसे तीव्र क्रोधसे फणा निकाल कर आनेवाला महान फणाधारी विषैला भुजंगराज [मांत्रिक के] मंत्र सुनतेही अपना शिर जमीनपर पटक कर शांत हो जाता है उसीप्रकार निजहस्तगत तीव्र विषैली करवालकी फणा गारकर

मत्रीको ठार करनेके उद्देशसे सक्रोध दौडकर आनेवाले राजपुत्रोंने मत्रीके मुखसे 'वहिन" यह मत्र सुनतेही अपनी तरवार जमीनपर फेंक दी, और जड चित्रके समान स्तब्ध खडे रहे । वहिन शब्द के मंत्रसे ही उनके शरीर मे से तीव्र मदन का जहरीला विष पूर्ण नष्ट होगया, क्रोध दूर हुआ लेकिन मुखपर का तेज भी क्षीण होगया। हृदय जलने लगा। इसवक्त पृथ्वी फटकर अपने उदरमे हम पापियोंको लेगी तो हमारा महान् भाग्य है इसप्रकार उनके दिलमे वारंवार विचार आने लगा। परिस्थिति कठिन थी। ऐसे समगमे भी निज प्राणसकट दूर करने के लिये व हमको कलहसे परावृत्त करनेके वास्ते यह मंत्री असत्य तो नही कहता होगा ? ऐसी उनको पुनश्च आशंका हुई।

" मत्रीके कहने मे कितना सत्याश है ?", संशय निवारणार्थ, एक समीपवर्ती वंदीसे कुमारोने प्रश्न किया।

बदी बोला,

आर्या,

पागल होकर हरने, जीवन है व्यर्थ क्यों परस्पर के ॥
नृपदुहिता कमलावति, भगिनी तुमरी हि ! वंदि यों भाखे ॥

कुमारोकी चर्यापरसे यह मालुम होरहा था उनका सशय अभी भी नहीं हटा है। उनकी संशयग्रस्त मुद्रा देखकर वंदी पुनश्च गद्गद् वाणीसे कहने लगा।

पद,

चालः—मी अधमा न शिवे.

यह भगिनी तुमरी भूपनंदिनी।

है सद्गुणी । सुशिल भामिनी ॥ ध्र. ॥
रतिसुखभोग्या नहिं है रमणी ।
कमलावती; ना विलासिनी ॥१॥

बंदी के दुबारा व इस प्रकारके वचन सुनते ही मंत्री के वचन की सत्यता का कुमारोंके दिल मे दृढतर विश्वास उत्पन्न हुआ अब उनको असह्य दुःख होने लगा । अविवेकसे किया हुआ पातक कैसा दूर करना चाहिये, अपनी पापीवासनासे लगी हुए कीर्तीका कलंक किसप्रकार धोना चाहिये, अपने अमानुष कृत्यसे बने हुए विफलजन्मको कैसा सफल करना चाहिये इत्यादि विचार उनके पश्चात्तापदग्ध अंतःकरण मे आने लगे । वे भ्रमिष्ट बन गये । किसीके पास अपना दुःख निवेदन करना उनको असह्य हुआ । दोनों भाईयोंसे समसमान अपराध हुआ था और वह दोनोंही परस्पर को निजापराध का क्षमापात्र बनाकर परस्पर के बारेमे दयाभाव दर्शाते थे । युद्ध बंद हो जानेसे परस्पर का चिरभावित प्रेम पुनश्च पूर्ण जागृत हुआ व परस्परकी तरफ देखकर वह शोक करने लगे ।

कव्वाली.

पापि अधम हैं, हमारा जन्म विफल है,
होता तीव्र दुख है !॥
नीच वासना भगिनिपर विषयभोग की ।
प्रगट की मदांध बनकर । जन्म विफल है ॥ १ ॥
कृष्ण वदन क्या बताएं जनकजननि को ।
वंश-कीर्ति-को लगाया दुष्कलंक है ।
होता तीव्र दुःख है ॥ २ ॥

" प्रधानजी, सब जन्ममें मनुष्यजन्म पाना महादुर्लभ है; ऐसी परिस्थितिमे नीच पशुवृत्ति प्रगट कर इसका आज हमने पूर्ण दुरुपयोग किया! हमारा जन्म होते ही मातापिताजीको आनंद हुआ, भविष्यकालमे हम अपने शुभ गुणोंसे निजनाम कमाने की आशासे बालकपनमे हम को प्रसिद्ध गुरुकुलमें सुप्रसिद्ध विद्वद्वर पूज्य सागरघोष गुरुजी के पास रखकर शास्त्रमे पारंगत कराया; लेकिन दुर्भाग्य है कि हमने उनको मीठा फल बताने के बदले बुरा ही फल दिखाया! कुलको कलंकित किया, मातापिताजीकी कीर्तीको धब्बा लगाया, पूज्य गुरुजीका नाम गमाया! प्रधानजी, कहो, हमने इस महा दुष्प्राप्य नरदेह का क्या सार्थक किया? यौवनमदसे मदांध होकर व कामका गुलाम बनकर कभी भी नहीं टूटनेवाला हमारा बंधुप्रेम क्षणार्धमे नष्ट हो गया! अय काम, धन्य है तेरी! तूने ही हमको उल्लू बनाया, हमारा विवेक छीन लिया व हमारी विद्वत्ताका जनताको प्रदर्शन कराया! पापी लोगोंसे भी न होनेवाला पापाचरण आज हमने किया! प्रधानजी, कहिये हमे इसके लिये क्या प्रायश्चित्त है? हम जन्मते ही मरजाते तो अच्छा होता। नहीं तो हम सरीखे पापियोंको पिताजीने यमपुरमें क्यों नहीं पहुचाया? उस हालतमे कमसेकम हमारा ऐसा कृष्णमुख उनको देखने का मौका न मिलता। प्रधानजी, पूज्य पिताजा अब आनंदसे इधर आवेगे लेकिन हमारे मुखदर्शनमात्रसे ही कलंकित हो जायेगे! हमको सकल कला-पारंगत करनेके उद्देशसे बालकपनमे हमारा असह्य वियोग सहन

करनेवाली वंदनीय माता मातृप्रेमसे उन्मत्त बनकर बडी प्यारसे हमारा चुंबन लेनेके लिये यहां आवेगी, किंतु दर्शनमात्रसे अपवित्र बन जायगी ! पूज्य भगिनी कमलादेवी को देखतेही हम अर्धमृत हो जायंगे। उसकी तरफ देखनेका हमारा कदापि साहस नही होगा। इस आपत्तीसे बचानेमें अब आप ही न्यायधुरीण, पापभीरु सज्जन पुरुष समर्थ हैं। अतः लीजिये, प्रधानजी, यह हमारी समशेर लीजिये व मातापिताजीके आने के पहिले ही एक वारसे हमारी गर्दन उडाकर यमदरबारमें भेज दीजिये ! ऐसे आधमाधम पापियोको जीता जागता रखकर पृथ्वी मंडलका वातावरण दूपित करना अच्छा नहीं है। निसर्गदेवताको ज्ञान होता तो अबतक हमारे शरीरको छिन्नविच्छिन्न कर क्षणमात्रमे वह कहीं न कहीं तितर वितर कर फेंक देती। इतना घोर अपराध हमसे हुआ है ! क्षुद्र प्राणीसे भी हम क्षुद्रातिक्षुद्र बन गये हैं। बस प्रधानजी, अब जादह नहीं कहा जाता व जादह दुःख भी नही सहा जाता ! हमारे जन्मकी इतिश्री हुई, जीवन खतम होगया, पापाचारण का अतिरेक हुआ ! प्रधानजी, विलंब मत करो: आवो, और इस समशेरसे निमिषमात्रमे हमको देहदंड दो !!

पश्चात्तापदग्ध कुमारोकी शोकपूर्ण करुणवाणी सुन प्रकृतिदेवीका हृदय भी पिघल गया था। प्रधान बिचारा सचेतन मानव देहधारी था। राजनिष्ठ सेवक था। हृदयका कोमल था। राजपुत्रोके शब्द श्रवणकर उसकी क्या अवस्था हुई होगी ? युद्धसे परावृत्त करते समय उसको जितना संकट प्राप्त हुआ था

उससे भी ज्यादह संकट इस समय मालूम होने लगा। "हमको देहदंड दो! हमारी गर्दन उडाओ!!" यह शब्द सुनना उसको असह्य हुआ था तो वह समशेर को कैसा स्पर्श करेगा? पश्चा-त्तापसे परावृत्त करनेके लिये कुमारोंको गद्गद कंठसे कहने लगा, पुत्रो अब शोक बंद करो! अज्ञानवश प्राणियोंके हाथसे महान् अपराध होते हैं। तो भी तुम्हारा मानसिक अपराध है वह कृतीमें नहीं उतरा। प्रत्यक्ष शरीरसे होनेवाले अक्षम्य अपराधके लिये ही प्राणदंडकी शिक्षा है। तुम्हारे मानसिक अपराध के लिये पश्चात्ताप करना यही पर्याप्त दण्ड है। अतः चलो हाथीपर बैठ जाओ राज-महलमें राज्याभिषेक की तैयारियां चली हैं। सारे आप्तगण व परिजन तुम्हारे शुभागमन की मार्गप्रतिक्षा कर रहे हैं। अब विलंब मत करो।

"राज्याभिषेक? हमारा राज्याभिषेक? अब यह बात सर्वथा असंभवनीय है। कुलभूषण हृदयको मजबूत कर धैर्यसे उत्तर देने लगा, प्रधानजी सिंहासन के लिये पापभीरु सदाचारी राजाकी आवश्यकता रहती है; हमारे सरीखे पापात्मा सर्वथा आयोग्य हैं। हमे प्राणदण्ड देना यही अब तुम्हारा कर्तव्य बाकी रहा है वह शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करो! यदि आपसे यह कार्य नहीं होता तो: —

पद.

(तोडी—त्रिताल.)

दो! हमको दो जहर जहाल!॥
अमृत समझ पीकर मानेंगे।
उसमें सुख चिरकाल!॥ ध्रु.॥
हम अधमाधम, स्पर्श करेंगी।
मदांध, नहि करवाल!॥

प्रधान बिचारा स्तब्ध होगया । थोडी देरके बाद कुमारोंका दिल शांत करनेका प्रयत्न करने लगा । उनको वह उपदेश करने लगा, " अनुतापसे कर्मबंध नष्ट होता है, आत्मघातसे नरकायुका बंध हो जाता है; विद्वानोंको शोकाकुल होना अनुचित है । शोक करना छोड दो ! आत्माके परिणाम शांत करो ! तुमसे ऐसा कोई महान् पातक प्रत्यक्ष कृतीमें नहीं उतरा जिससे भवभव मे अध:पतन हो जायगा । परिणामोमे मलिनता पैदा होनेसे पापास्त्रव होता है यह तत्व मै भले प्रकार जानता हूं । किंतु कृतपापके लिये शोक करते बैठनेसे घोर पापबंध होता है, इस तत्वसे भी मै कुछ अज्ञात नहीं हूं । परिणामविकृति के निमित्त आत्मामे प्रविष्ट व प्रवेश करते हुए कर्मोंका रोकने का अब इलाज करो ! आत्मामे विशुद्धता लाओ ' Calmness is the best medicine to purify the dirty soul, attached to dust of karmas ! ' कर्मसे संलग्न मलिन आत्मा शुद्ध करनेकेलिये शांतता एक दिव्य औषधी है । यही औषधी अब ग्रहण करो ! अनादिकालसे कर्मबध्द यह आत्मा कहांसे आया, किस परिणामसे यह कर्मबद्ध हुआ, इसने कितने पूर्वजन्म धारण किये, पूर्व जन्ममे इस को क्या क्या दुःख सहन करने पडे, दुःखनिवारणार्थ इसने क्या क्या सत्कृत्य किये जिसके पुण्यफलसे इसको उच्च कुलका मानवजन्म प्राप्त हुआ और आगे इस जन्ममे इस को कर्मोंसे मुक्त होनेके लिये क्या क्या उपाय करना चाहिये इत्यादिका विचार शांतता धारण करनेपर ही होता है । अरे भाई, तुम्हारेसे

भी घोर पातक करनेवाले पापात्माओंने काललब्धि समीप आते ही शांतता धारण कर अपने शुद्ध विचार व आचारसे कालांतरके बाद पातक नष्ट कर मोक्षलक्ष्मी प्राप्त की है । वे तुम सरीखे शोक करते नहीं बैठे ।

कोटि जन्म तप तपें ज्ञानविन कर्म झरें जे ।
ज्ञानी के छिनमें त्रिगुप्तिसे सहज टरें ते ॥

" तुम ज्ञानी हो । तुम्हारा पातक नष्ट हो जायगा । तुम्हारे पुण्योदयसे तुमको मानवदेह प्राप्त हुआ है । इस वक्त सत्कृत्यसे तुम पुण्योपार्जन कर सकते हो । कीचडसे भरे हुए हाथ या मट्टीसे मलिन हीरा फेंक नहीं देते । उसे धो धो कर शुद्ध कर लेते हैं । इसी प्रकार तुम्हारे परिणामविकृतीके कारण उद्भूत पापकर्दमसे मलिन आत्मा अब शुद्धाचरण व तप आदिके शुध्ध जलसे विशुध्द करो ! जहर पी लेनेसे अथवा शिरच्छेद कर लेनेसे आत्मघात का पातक लगता है । आत्मघातसे आत्माका अध:पतन होता है । उसका कल्याण कभी नहीं होता । ऐसे आत्मघातकी व नीच विचार क्षणमात्र स्वप्नमे भी नहीं लाना चाहिये । निर्बल के दिलमे आत्मघात के विचार हमेशा आते रहते है । तुम निर्बल नहीं हो । शूर हो । अपने अनुपम साहस व धैर्यसे पातको का सहज नाश करने की अतुल शक्ति व ज्ञान तुम्हारे हृदयमे निवास कर रहा है । अत:अधीर मत होओ । कितनेही जन्मोमे अविचारसे ऐसे कई पातक अपने हाथसे होगये होंगे । उसके लिए शोक करना छोड दो ! शांतता धारण करो ! चलो, राजमहल में राज्यलक्ष्मी

'तुमको वरने के लिए तीव्र लालायित होकर, देखो कैसी--राह देख रही है।"

इसप्रकार प्रधानजी के उपदेशसे राजपुत्र कुछ शुद्धिपर आये। उनको यह सारा संसार असार मालुम होने लगा। यह आत्मा कर्मोंका गुलाम बनकर उन्मत्त मद्यपीवत् अपने स्वरूपको भूलकर इंद्रियजन्य सुखोके लिए रात्रिंदिन प्रयत्न करता हुआ परिणामोको क्लिष्ट करता है और आत्मोन्नतीके मार्गसे वंचित होकर, इस संसार मे--भ्रमिष्ट बनकर--इतस्ततः भटकते फिरते अनंत दुःख भोगता है; किंतु अपने आत्मस्वरूप को पहिचान कर कर्म के दास्यसे छूटने की अभिलाषा स्वप्नमे भी (कदापि) नहीं करता। इसलिए इसने यदि आगमादि का अभ्यास किया तो भी अविवेक से मूर्ख प्राणीके समान उल्लू बनकर नीच कार्य करने में इसको लेशमात्र लज्जा नहीं मालूम होती।

अनंत प्रयत्न से पुण्योपार्जन होनेपर यह मानव देह प्राप्त होता है। इसी देहमे प्राणी अपना कल्याण कर सकता है। अन्यथा हाथ मे आये हुए चिंतामणि रत्नको खोकर मूढ प्राणीके समान अपना सर्वस्वनाश कर लेता है। इस संसार में स्त्री व कांचन का मोह बडा अनिवार्य है। इसमे एक वक्त फसा हुआ प्राणी ऊपर कदापि नही निकलता। मदनकी शक्ति सबसे अगाध है। इस मदनपूर्तीके लिए ही प्राणी मदांध बनकर, माता, बहिन आदिका नाता भूलकर नीच कार्य करता है व घोर पातकोंसे बद्ध होकर अनत कालतक नरकमे रौरव दुःख भोगता है। ऐसे

इस संसृतिके फंदेसे अब शीघ्र ही दूर होना चाहिए। जैनी दीक्षा प्राणीको इस फंदेसे दूर कर सकती है। वह धारण कर आत्माका कल्याण करना चाहिए। इस विचारसे दोनों भाइयोंने दिगंबरी दीक्षा लेने का दृढ निश्चय किया । और वह प्रधानजीसे प्रगट किया।

तृतीय परिच्छेद समाप्त.

चतुर्थ परिच्छेद.

दिगंबरी दीक्षाका निश्चय.

कुमारो को राजमहल में चलने के लिये मंत्री आग्रह करता था और राजकुमार इन्कार करते थे।

इधर सारे शहर मे कोलाहल मचा था। छज्जेपर वहिन खडी थी। बंधुद्वय में किस कारण से झगडा चल रहा यह कुछ उसके समझ मे नहीं आया था। हाथमे पंचारती लेकर अपनी सहेलियों के साथ बडे आनंद से भाइयो को मिलने के लिये व प्रेमके साथ उनका स्वागत करने के हेतुसे उनके निकट आई। उसको देखते ही बंधुद्वयने लज्जाके मारे अपने मुह छिपा लिये। यह परिस्थिति देखकर बिचारी कमलावती दुःखित हुई व करुणस्वर से प्रार्थना करने लगी,

गजल.

क्यों देखते न भाई। आई बहिन तुम्हारी ॥ धृ ॥
दर्शन बिः तजि आशा ॥ धरि चित्त में, निराशा ॥
ना कीजिये, है विनती, ॥ देखो वहिन तुम्हारी, ॥ १ ॥
आपस में युद्ध क्यों तुम ॥ करते न होता मालूम ॥
झट शांति दिल में धारों ॥ कहती वहिन तुम्हारी ॥ २ ॥

" भाइयो, यह तुम्हारी प्यारी वहिन तुम्हारे सुस्वागतार्थ आरती उतारनेके लिये हर्षातिरेकसे तुम्हारे निकट आई है; लेकिन आप लोग मेरी तरफ देखते भी नहीं हो ? आपस में अत्यंत बंधु

प्रेम होते हुए तुमने किस कारणसे युद्ध किया, परस्पर का प्राण हरण करने की तीव्र अभिलाषा क्यों उत्पन्न हुई? यह पूछने के लिये मैं यहां आई तो तुम अपना मुख छिपा रहे हो। मै बच्ची थी जब विद्या संपादन करनेके उच्च हेतु से तुम गुरुकुल में गये, मैंने तुमको अभी तक देखाही नहीं था अर्थात् मुझे कोई बंधु है या नहीं इसकी कुछ खबर भी नहीं थी। लेकिन माता के मुखसे तुम्हरा वृत्तांत सुनते ही तुम्हारे दर्शनकी तीव्र इच्छा कतिपय दिनसे उत्पन्न होनेसे मै तुम्हरी हमेशा राह देखती थी। सुभाग्योदयसे आज वह सुदिन प्राप्त हुआ। किंतु दुःख है कि तुम मेरी तरफ देखते ही नही। ऐसा मुझमे क्या अपराध हुआ जिससे तुम्हारा हृदय इतना कठोर हुआ? भाई मैं तुम्हे शरण आई हूं, इसपर क्षमा करो व मुखपरसे आच्छादन दूर कर इस अभागिनी भगिनीको दर्शन दो"

"बहिन तुम यहा से चले जाओ! तुम पुण्यशील हो। हमारे दर्शनमात्रसे तुम अभागिनी बन गई है। हमारा मुख देखतेही तुम्हें पातक लगेगा। इसलिये अट्टाहास छोड दो! तुम यहां से शीघ्र चली जाओ! यदि हमारा कहना नही मानोगी तो हम अपना आत्मघात कर लेंगे।' इसप्रकार कुमारोंने राजकुमारी को उत्तर देकर अवाक् कर दिया।

कमल किंकर्तव्यमूढ बन गई। अपने हाथसे ही कुछ अपराध हुआ होगा जिससे मेरा मुख देखनेके लिये बंधुद्वय नाराज हुए हैं व आत्मघातका नीच विचार जागृत कर रहे हैं इस विचारसे वह अत्यंत

भयभीत हुई व निमिषमात्र भी वहां नहीं ठहरी। शीघ्रातिशीघ्र माताके समीप जाकर उसको सारा वृत्तात कह सुनाया। माता अत्यंत उत्कंठासे पुत्रोंकी राह देखती थी। कमलावती का वृत्तात सुन वह घबडा गई और पुत्रोंके पास भागकर आई।

श्लोक.

आई माता भागती बालकोंसे।
बोली, "बाधा क्या हुई है किसीसे ?॥
क्यों ऐसे तुम खेलते युद्ध प्यारे ?।
प्राणाशा ना क्या तुम्हें ? अय सितारे !"॥

वह कहने लगी, "पुत्रो, मैं तुम्हारी माता, तुम्हारी जन्मदात्री तुम्हारे दर्शनकी तीव्र उत्कंठा धारण कर यहा भागती आई हूं; अतः चिरकालसे पुत्रवियोग के मारे विहुल इस मेरे हृदय को आलिंगन देकर शांत करो ! यह तुम्हारी बहिन तुम्हारे दर्शन के लिये आई है इसको देखते ही तुम अपना मुख क्यो छिपा ले रहे हो इससे कुछ अपराध हुआ होगा तो मै इसको अवश्य शासन करूंगी। राजमहल मे आनेके लिये नाराज क्यो हो ? तुम्हारे बिना राजमहलमें हमारा भावी जीवन किसके आधारपर बीतेगा हमारा हृदय संतुष्ट करना तुम्हारा परम पवित्र पुत्रधर्म है इधर ध्यान देकर राजमहलमे चलो व राजसिंहासन सुशोभित करो।"

अपनी परमपूज्य माता की वाणी सुन, कुमारो को उत्तर देना बडा कठिन हुआ। कुछ देरके बाद वह कहने लगे, "माताजी, पूज्य भगिनी कमलावती की तरफ कुछ अपराध नहीं है। हमही पापी दुरात्माओंने इसका घोर अपराध किया है

जो सर्वथा अक्षम्य है। इस अनंत अपराध का प्रायश्चित्त देनेका किसीमें सामर्थ्य नहीं है शायद इस पवित्र पुण्यशील भगिनीके चरणस्पर्शसे ही हम पुनीत हो जायेंगे। भगिनी तुझे हम शरण आये हैं, दयाभावसे कृतापराधकी पूर्ण क्षमा कर !

पद.

(मालकौंस, त्रिताल.)

भगिनि चरणपर शरण तिहारे ॥ धृ ॥

शरम छोड, बेशरम बने स्मर-शरसे मूरख हैं हम मारे ! ॥१॥

प्रेमलता धर, पूर्ण क्षमा कर, भीख भाइ मांगत यह तेरे ! ॥२॥

ज्येष्ठ भाइयोकी यह कृति देख कमलावती स्तब्ध खडी रहकर विचित्र दृष्टीसे उनकी तरफ टकटकी लगाकर देखने लगी। माता तो आश्चर्यचकित होगई। वह उनको बोली, " पुत्रो, तुम पागल तो नहीं बने ! अभीतक तुम राजमहलमें भी नहीं आये, और कमल को इसवक्त तक देखा भी नहीं था, फिर तुमने इसका क्या अपराध किया ? "

राजपुत्र निरुत्तर हो गये। उनके मुखसे एक शब्द भी निकलना अत्यंत मुश्किल हुआ। आखिर प्रधानजीने संक्षिप्तमे सारी हकीकत कह सुनाई जिससे माता और राजपुत्री को बडा दुःख हुआ। दोनो भी कुछ देरतक स्तब्ध हुई।

यह मन चंचल है। अज्ञानसे बहुतसे अपराध होते है। तुम्हारा अपराध सर्वथा अक्षम्य नहीं है क्यों कि यही कमल तुम्हारी बहन है ऐसा तुमको मालुम नहीं था। अतः अज्ञानसे

किये अपराधकेलिये पश्चात्ताप करना व्यर्थ है' इत्यादि रीतीसे मातानें पुत्रोको समझाया परंतु वह सब व्यर्थ हुआ।

इधर कर्णोपकर्णसे यह वार्ता राजाके कानोतक पहुची। वह अत्यंत खेदखिन्न हुआ। झट् दौडकर पुत्रो के निकट आया। पिताजी का आगमन होता हुआ देख कुमार अत्यंत घबरा गये। वे जमीनपर मूर्च्छित हो गिर पडे। बहुत शीतोपचार करनेपर शुद्धिपर आये। दोनोने पिताको विनयसे वंदन किया। भगिनी कमलादेवीसे हाथ जोडकर अत्यंत दीनवाणी पूर्वक क्षमा की याचना करने लगे। उसके चरणो पर गिर पडे। क्षेमंकर महाराज चकित हो गये। यह कनिष्ट भगिनी होते हुए हमारे सामने उसको श्रेष्ठ पदका मान देकर उसके चरणपर शरण आनेका कारण कुमारों को पूछने लगे तो उन्होने उत्तर दिया:—

कव्वाली.

भगिनी ना पिताजि ! है हमको सद्गुरु यही।
स्मृति गतजन्मकी हुई, हमको सद्गुरु यही ॥ ध्रु. ॥
" राज्य-इंद्र-सौख्यमें ना लेश सौख्य है।
भवमें दुःख ! " कहति हैं भगिनी सद्गुरु यही ॥१ ॥
" मुनिदीक्षा-सुकामिनी कि करो पूर्ण कामना।
चिर जो सुखद ! " कहति है भगिनी सद्गुरु यही ॥२॥
" वनगिरीगुहाहि तुम्हें राजसदन है।
" जाके आत्मरत रहो ! कहती भगिनि गुरु यही ॥ ३ ॥

कुमारों के इस भाषणसे राजा चकित हुआ, उसके दिलमें घबराहट पैदा हुई, राणी भयभीत हुई, कमलावती रोने लगी,

'लोगोंके नेत्रोंसे गंगाजमुना बहने लगी, जिधर देखते हैं उधर हाहाकार मच गया ! !

राज्याभिषेक का मुहूर्त निकट आया। ब्राह्मण गडबड करने लगे। सारी जनता राजसिंहासन भूषित करनेके लिये अत्यंत आग्रह करने लगी; लेकिन राजपुत्रोंने साफ इन्कार किया।

कुमारों को पूर्ण विरक्ति प्राप्त हुई थी। वह वैराग्यभावसे जनताको कहने लगे:—

श्लोक.

क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी, क्वचिदपि सुरामत्तकलहः।
क्वचिद्वीणावाद्यं, क्वचिदपि च हाहेति रुदितम्।
क्वचिद्रम्या रामा, क्वचिदपि जराजर्जरतनु-।
र्न जाने संसारः, किममृतमयः किं विषमयः।

" सज्जनों, यही सत्यता इस समय देखने मे आ रही है। एक क्षण पहले यह सिद्धार्थ नगरी आनंदमग्न हुई थी और दूसरे क्षणमे आकाशकी चंचल बिजलीसमान आनंद नष्ट होकर यही पुरी दुःखके गहरे समुद्रमे डूब रही है। जहर के ऊपर शर्कराके पुट देनेसे खातेवक्त वह मीठा लगता है परंतु परिणाम में वह प्राणहरण करता है उसीप्रकार यह संसार है। इसमे जितने सार भोग हैं वह प्रथमतः आनंददायक दीखते है लेकिन अन्तमे जीवन नष्ट करनेवाला दुःखकारक ही फल उनसे प्राप्त होता है। इसमे फंसा हुआ प्राणी कुत्तेके समान (जिसको हड्डी चबाते वक्त आनंद होता है लेकिन मुंहसे निकलते हुए रक्तका ज्ञान नहीं होता) अपना बुरा हाल कर लेता है।

सर्व गतियोंमें मनुष्य गति श्रेष्ठ है। क्योंकि मोक्ष का साधन जो तप और संयम इन दोनोंका अभ्यास प्राणी इसी गतीमे कर सकता है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र की प्राप्ति इसी गतीमे होती है। बडी मुष्किल से, पूर्वजन्मके अतीव पुण्यबलसे सौभाग्य का तीव्र उदय होनेपर यह गति प्राप्त होती है। ऐसे जन्ममे जो अपने आत्माका कल्याण नही करता वह '**अजागलस्तनस्येव तस्य-जन्म निरर्थकं**' इस उक्ति की सत्यता सिद्ध करता है।

"इस वक्त अजिंक्य बलधारी मदनरूपी व्याघ्र, हमारे आत्माकी शिकार कर, अपने तीव्र शरावली के पाशमे जकडकर अत्यंत त्रस्त कर रहा है। इस लिये निर्जन वन मे जाकर, दिगंबर दीक्षा धारण कर प्रज्वलित तपोग्नि मे इस को भस्म कर के आत्मा को भयमुक्त करना चाहिये। जिसने हमारा अधःपतन किया, जिसने हमारी उज्ज्वल कीर्ति को कलंक लगाया व उच्च कुल को दूषित किया, जिसके गुलामगिरीमे फंस जाने से विवेकशून्य बन-कर निर्लज्जतापूर्क अपनी पूज्य भागिनीपर हमने नीच वासना प्रगट की और जिसकी पूर्ती के लिये बंधुद्वयका नाता भूल कर परस्परका प्राणहरण करनेके लिये उद्युक्त हुए, उस कामको तपोग्नि मे भस्मसात् करना, उसको देहदंड देना यही योग्य शिक्षा है। सर्व दानोमे अभयदान श्रेष्ठ है। निजात्माको अभयदान देने का यह सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ है। इस प्रसंगको व्यर्थ खोना नहीं चाहिये।"

" प्रधानजी आप वापिस चले जाओ। माताजी, आप भी यहा मत ठहरो। पूज्य भगिनी, हम तुम्हारे शतश अपराधी हैं; हमपर दयादृष्टिसे क्षमाभाव धारण करो। पिताजी, आप हमारे निश्चय मे बाधा न डाले। और नागरिक सज्जनो, आप सब मिलकर हमे अरण्य मे जाने की आज्ञा आनद से दे दो!"

" पिताजी, सिहासनपर बैठने का अब हमारा अधिकार नही है। तुम्हारे पवित्र सिहासनको हम दुरात्मा अपवित्र नही बनाते। हम से घोर अपराध हुआ है जिसको, जिन-दीक्षा धारण कर तपादिकसे सुकाना, यही योग्य प्रायश्चित्त है। जिनदीक्षा लेनेका हमारा पूर्ण निश्चय हुआ है। 'वनगिरि, गुहादि ही हमे राजसदन है!' वहा जाकर हम आत्मध्यानमे तल्लीन हो जायेंगे, दुष्ट पंचेद्रियोका दमन करेगे, तपके प्रभावसे कामक्रोधादि शत्रुको पराजित कर, दुष्ट महामोहादि कर्मारिका निपात कर उनपर शासन करेगे और आखिर इस मर्त्यलोककी सुंदरीके बदले अक्षय सुखदायिनी मुक्तिसुंदरीके साथ सानद विवाह करेगे।

पुत्रोके विरक्तिपूर्ण भाषणसे क्षेमंकर माहराजका दिल अत्यंत दुःखित हुआ। दीक्षाके बाद पुत्रवियोगका दुःख (भावी-कालमे) असह्य होगा एतदर्थ वैराग्यभावनासे पराङ्मुख करनेके लिये उनको गद्गद वाणीसे राजा कहने लगा, "प्यारे पुत्रो, तुम गुहामे रहोगे तो यह राजगृह क्या कामका? वंशका आधार टूट गया तो इस राज्यधुराको उठानेवाला कौन रहेगा? इसकी कैसी हालत होगी? प्रजा अनाथ व निराश्रित हो जायगी। दीक्षाका

विचार छोड दो ! अज्ञानवश तुम्हारेसे यदि अपराध हुआ है तो भी दीक्षा लेनेसे ही उसका प्रायश्चित्त नहीं होता है। नानाविध सत्कर्मसे भरत चक्रवर्तीके समान घरमे रहकर गृहस्थ अपने पापोंका क्षय कर सकता है। तुम्हारी माताने अपार कष्ट सहनकर तुमको बडा किया व मैंने भी बडे प्रयत्नसे विद्या सिखलाई; तुम हमारी वृद्धावस्थामें हमको आनंदित करेंगे, अपने सत्कृत्य व पुरुषार्थ से हमारे यशमें तुम्हारा उज्ज्वल यश मिला देगे यही प्रबल आशा हमारे दिलमें जागृत रही; किंतु आज उसकी जड उखडी जा रहीसी देखकर अंतःकरण मे घबराहट पैदा हुई है। हमारी इस अवस्थापर रहम करो, उपकारको न भूलो व दीक्षाका विचार छोडकर राज्यपदका स्वीकार करो ! ”

पुत्रोंने उत्तर दिया “ पिताजी, ‘ भरतजी घर ही में वैरागी ’ थे। हमारे सरीखे पापाचरण नहीं करते थे । कहा वह महात्मा और कहां हम नीच ! वह गृहस्थ थे किंतु निर्मोही थे, सदाचरणी थे, इंद्रियविजेता थे । इस लिए वह मोही मुनियोंसे श्रेष्ठ गिने जाते थे । घरमें उन्होंने पापोंका क्षय किया किंतु कर्मोंका क्षय करनेके लिए उनको भी सब गृहपरिवारको छोडकर दिगम्बर दीक्षाको धारण करना ही पडा । ऐसे भरत महाराज की बराबरी कोन कर सकता है ? उनके समान योग्यता हमारे में अणुमात्र भी नहीं है। ऐसे चक्रवर्ती, बाहुबली समान महान् शक्ति धारी इतनाही नहीं, तीर्थकरादि सरीखे निज परका कल्याण करनेवाले त्रैलोक्यनाथ आज इस पृथ्वीतल पर जीवित नही है

वो -पिताजी, तुम्हारे वंशकी क्या बात ? यह कभी न कभी कालका भक्ष्य हो जायगा !"

शास्त्रमें कहा है:—

गजल.

महान निर्दय है एक जगमें यह काल किसको न छोडता है।
रावरंक, सुरेन्द्र नृप वा, यह काल किसको न छोडता है ॥ध्रु
महाज्ञानी थे तीर्थंकर, महावक्ता थे श्रीगणधर, ।
महावलधारी वाहुबली, महायोद्धा थे श्रीरघुवर, ॥
धनुर्विद्या निपुण अर्जुन, महामदधारि था रावण ।
युधिष्ठर सुष्ठ थे, अतिदुष्ट था तद्भ्रात दुर्योधन ॥
थे भरतचक्री विभवधर हा, कालवश सब न दीखत हैं ! ॥१

कुमारों का कहना बिलकुल सत्य था। श्रेयास महाराजा के समान महादानी व श्मश्रुनवनीत सरीखा कजूस, सेठ सुदर्शन के समान शीलधारी व महामदधारी रावण सरीखा परस्त्रीलपट, धनदेवसमान सत्यवक्ता व सत्यघोष सरीखा झूट बोलनेवाला, यमपालसमान अहिंसा प्रतिपालक व धनश्री सरीखी महाहिंसक आदि सर्व शिष्ट व दुष्ट इस कालने अपने भक्ष्य बनाये हैं! उनका अस्तित्व भी आज इस भूतलपर नहीं दीखता ! महाराजा सगर चक्रवर्ती को ९६ हजार स्त्रियां व ६० हजार पुत्र थे लेकिन इतना बडा परिवार आज कहीं के कहीं छुप गया !

श्लोक

सा रम्या नगरी महान् स नृपतिः, सामन्तचक्रं च तत् ।
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषद्, ताश्चंद्रबिम्बाननाः ॥
उन्मत्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः ।
सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः ॥

ऐसे काल को कवीने नमस्कार किया इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। इस कालके सामने कोई भी वस्तु टिकती नहीं। इस संसार मे जीवपुद्गलादिक द्रव्योंका यह (काल) हमेशा परिवर्तन करता है। इसको ही हम वस्तु का नाश हुआ ऐसा मानते है। इस ससारमे इसका ही महात्म्य है इसलिये सारी सुंदर सुंदर वस्तुएं अथवा अन्य पदार्थ क्षणभंगुर दीखते है। मोक्षमे इसका अस्तित्व नहीं है अतः वहा के अनंत दर्शनज्ञानसुख आदिमे परिवर्तन कभी भी नहीं होता। चिरकाल तक उसका अस्तित्व कायम रहता है तस्मात् भव्य प्राणी उसे प्राप्त करनेके लिये अकाट्य प्रयत्न करते है। अस्तु।

वह कुमार अपने पिताजी से संसारकी निःसारता बताने के लिये कहने लगे, " सूर्यवंश अथवा हरिवंशादि सरीखे बडे बडे वंश आज कालके कवलसे नही बचे तो अपने वंशकी क्या कथा ? यह सारा संसार क्षणभगुर है। यदि यह अविनश्वर होता तो पट् खंड पृथ्वी के मालिक, नवनिधि चौदा रत्नके अधिपति चक्रवर्ती और त्रैलोकेश्वर महात्मा तीर्थकर अपनी महान् विभूति को तृणवत् छोडकर अरण्यवास क्यों करते ? इस संसार का मोहजंजाल बडा कठिन है। इसमे फंसा हुआ प्राणी हाथमे लगे हुए चितामणि रत्नका उपयोग काकको उडाने मे खर्च करनेवाले महामूर्खके समान, अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ गमाता है। नीतिकार कहते है:—

श्लोक.

ते धत्तूरतरुं वपन्ति भुवने, प्रोन्मूल्य कल्पद्रुमम् ।
चिंतारत्नमपास्य काचशकलं, स्वीकुर्वते ते जडाः ।
विक्रीय द्विरदं गिरीन्द्रसदृशं क्रीणन्ति ते रासभम् ।
ये लब्धं परिहृत्य धर्ममधमा धावन्ति भोगाशया ॥

" संसार में सारे विषयजनित भोग फैले हुए है । इसमें फंसा हुआ प्राणी धर्मसाधन करने में दुर्लक्ष करता है इसलिये वह अपने घरमें कल्पवृक्ष उखाडकर धतूरा लगाता है; चिंतामणि रत्न फेककर काच इकठ्ठे करता है व पर्वतप्राय मस्त हत्ती बेचकर गधे खरीदता है । पिताजी, ऐसे मूर्ख प्राणीकी जगतमें क्या कीमत ? हम ऐसा मूर्खपना नहीं करना चाहते " और भी,

पद.

(जोगी—धुमाळी)

संसार, दुर्गतिद्वार, संकटागार, विनश्वर सारा ।
दुःखदायि, मोहपसारा ! ॥
यह विषयवासना दुष्ट ! दुष्ट ! अतिकष्ट देति भवको है ।
दुर्गतिमें भटकाती है ! ॥
मुनिदीक्षा की भावना, मनोकामना मुक्तिरमणी की ।
कर्मारिशक्ति हरने की ! ॥

"पिताजी, संसारमें दुःख ही दुःख भरा है मोक्षसुखकी हमे प्रबल इच्छा है । वह प्राप्त करने के वास्ते हमने जिनदीक्षा लेनेका पूर्ण निश्चय किया है जो कदापि नहीं बदल सकता ! "

पिताजी बोले, " पुत्रो, तुम्हारा निश्चय प्रशंसनीय है लेकिन संसारका सार अनुभव के सिवाय कैसा मालूम होगा ? इसवक्त तुम

गुरुकुलसें आये हो। सांसारिक भोगोंका रहस्य तुम क्या जान सकते ? गृहस्थाश्रमका महत्त्व बडा है। यदि गृहस्थाश्रम नहीं होता तो तीर्थंकरादिसरीखे नररत्न कदापि उत्पन्न नहीं होते, यदि गृहस्थावस्थाका अभाव होता तो मुनियोंका धर्म नहीं चलता। गृहस्थाश्रम के भोगोकी लज्जत कुछ और ही होती है। इसलिये आदिनाथ तीर्थंकर सरीखे महात्माओने प्रथमतः विवाह कर संसार के विषयसुखोका पूर्ण आस्वाद लिया; बाद दिगंबर साधु बने। जगका ऐसा ही नियम है कि हर एक संसारी जीवने विषयसुख मनसे भोगने चाहिये। जिसमे तिरस्कार उत्पन्न होने के बाद वह खुदही उसको छोड देता है। ऐसा प्राणी वन मे जाकर संन्यास वृत्तीमे आत्माचिंतन करता है। विषयभोगो की आशा न रहनेके कारण अपने इंद्रियोंको जीत लेता है और कर्मोंका नाश कर मोक्षसुख पाता है। जो संसार का अनुभव लेनेके पहिले ही साधु बनता है उसका दिल विषयोकी तरफ जाता है फिर वह आत्मकल्याण नही कर सकता। एक कवि कहता है:—

Enjoy ! until you dislike the worldly pleasure.
To meditate upon, go into a forest
Easily you check success, find the happy treasure.
That everlasts after crushing the envy's strength

"संसारमें गृहस्थ की कीर्ति होती है। श्रेयांस महाराजने— गृहस्थावस्थामे कीर्ति फैलाई। संसारमे मानसिक उन्नति होती है। प्रेम, वात्सल्य, सहानुभूति, स्वार्थत्याग, परहिततत्परता, सहिष्णुता इत्यादि सद्गुण प्रपंच मे होते हैं। भरत चक्रवर्ति को मुनि

होनेके पहिले यही गुण प्राप्त हुए थे। संसार में ही सच्चा सुख है। संसार को भोगनेवाला भाग्यवंत समझा जाता है।"

आर्या

ओसष्ट-बंधु-भगिनी, हैं जिसको सुंदरी प्रिया युवती।
बहु भाग्यवंत जनमें, है उसकी भाग्यवंतमें गिनती॥
तारुण्य रूप सुंदर, तपमें ना व्यर्थ खर्च करना जी।
संसारानिरत होकर, खल अरिचलमद्विनाश करना जी॥

"इसलिये पुत्रो, तुम मेरा कहना मानो! तुम अपना तारुण्य व अनुपम सुंदरता व्यर्थ मट्टीमोल नहीं बनाओ! सुंदर व सुशील रमणी के साथ संसारसुखका आस्वाद ले लो! फिर दीक्षा धारण करो! पूर्वसुकृतसे प्राप्त हुए राजविभूतीका अनादर न करो!"

"Do not put off till to-morrow what you can do to-day!" राजपुत्रोंने झट उत्तर दिया। आगे वह कहने लगे, "महाराज हम पूर्णतया संसार सुखकी अनुकूलता प्राप्त हुई; यह आपकी बात सत्य है, किंतु सर्व भोग विषके समान मालूम होते हैं। अब हमको किसी की आशा नही रही। है क्यो कि:—

श्लोक

जिसे कामकी स्वप्नमें कामना ना।
उसे वित्तकी लेश भी कामना ना॥
जिसे काम की, वित्तकी कामना ना।
पडेगा कभी मोहकी पाश में ना॥

जो विषयसुख चाहता है वह सुंदर कामिनी की इच्छा रखता है। भोगो मे दिन बिताने की जिसको आशा उत्पन्न है वही संपत्ति के लिये प्रयत्न करता है। उसकी

प्राप्तीमें आनंद मानता है । जो अपनी हुकमत चलाना चाहेगा वही राज्यसिंहासनपर बैठनेके लिये लालायित होगा ! हमें किसीकी भी इच्छा नहीं है । यदि संसारसुखका हमने अनुभव नहीं लिया तो भी निसर्गतः हमको उसका पूर्ण तिरस्कार उत्पन्न हुआ है । निसर्गसे तिरस्कृत पदार्थकी यह दिल कदापि इच्छा नही करेगा । मन चंचल है । यह किस वक्त क्या करेगा इसका कुछ भरोसा नही । आज यह पूर्ण विरक्त बन गया कल मोहके फंदेमे नहीं फसेगा इसका कौन भरोसा दे सकता है ? तस्मात् हमने आज जो निश्चय किया है वह क्षणमात्र के लिये भी स्थगित नहीं करना चाहते ! " इतना कहकरः—

साकी.

राज्य विनश्वर छोड हो गये विरक्त राजकुंवर जी ।
मुनिदीक्षार्थ कर्मबलहर निज नगरीसे निकले जी ।
सहर्ष जव वनमें । शोकाकुल जन पुरमें ! ॥ १ ॥

राजकुमार घर छोड मुनिदीक्षार्थ बनमे निकले तब सारे सिद्धार्थ नगरीमे हाहाकार मच गया ! जनताके नेत्रोंसे अखंड अश्रुधारा बहने लगी । राजराणी व राजकन्या मूर्च्छित हो गई । सर्वत्र दुःखकी छटा छा गई । परंतु राजपुत्रोंकी वृत्तीमे बिलकुल फरक नहीं हुआ । उनकी वैराग्यभावनामे लेशमात्र चंचलता प्राप्त नही हुई । बडी गंभीरतापूर्वक शांतवृत्तिसे लोगोंको समझाने लगेः—

पद

(रागः—मुलतान त्रिताल)

रोवत जन, तुम क्यों माताजी ! ।
माताजी नृपनाथ जी ! ॥ धृ ॥
जन्मादिक अति दुःख सतत है, संसृतिमें हम जानाजी ॥१॥
मोक्षपरमसुख चाहत वनमें जात; विनति मन रोकोजी ! २

" नागरिक सज्जनों, संसारसे विरक्त हुआ यह मन अब प्रपच का गुलाम कभी नही बनेगा ! माताजी, तुम शोक करना बंद करो ! मंगलकार्यार्थ पूर्णानंदमय मार्गका अवलंबन करनेके हेतुसे हम उद्युक्त हुए हैं । ऐसे शुभ समयमें तुमको शोकाकुल होना सर्वथा योग्य नहीं है । शोकाकुलता से कर्मबंध होता है यही पाठ प्रधानजी ! आपने हमको सिखाया और आप ही शोक कर रहे हो ? एकही स्त्री की अभिलाषा हम दोनोंमे उत्पन्न हुई थी जिसमे हम दोनो परस्पर के प्राणहरणार्थ सज्ज—खडे हुए थे । यदि आप बीचमे नहीं आते तो हमारे प्राण कभीके कभी खतम हो जाते; परतु आपके महदुपकार है जिससे हमको 'जीते जागते आत्म-कल्याणार्थ मुनिदीक्षाका शुभअवसर प्राप्त हुआ है । संसारमे 'आशा सबकी घातिनी ' है; इसका सबसे प्रथम घात करना चाहिये । एतदर्थ हम सारे राज्यैश्वर्यको छोड वनमे जारहे हैं । हमको इस कार्यके लिये अब आनदसे आज्ञा दे दो ! "

कव्वाली.

हम तो जोगी बन गये, यतिपन हमारा धर्म है ॥धृ॥

स्वर्गके अमरेन्द्र सम निजराज्य तृणवत् छोडके ।
वनमें जाना ध्यानमें लवलीन होना धर्म है ॥
संसृतीसागर में गोता जीव खाता है सदा ।
दुःख होता दुःखका झट नाश करना धर्म है ॥२॥
संसृतीदुखहारि दुर्लभ तीन रत्न अमूल्य है ।
मुक्तिसौख्यद जन्ममें इस प्राप्त करना धर्म है. ॥३॥

राजपुत्र वनकी तरफ निकले । राजाप्रजादि सभीने उनको रोकनेका खूब प्रयत्न किया किंतु वह निष्फल हुआ !

चतुर्थ परिच्छेद समाप्त.

पंचम परिच्छेद.

माताका रुदन व कुमारोंका दीक्षाग्रहण.

कालकी महिमा अतर्क्य है। समय समय में यह क्या फेर-बदल करेगा इसका ज्ञान किसी भी छद्मस्थ जीवोंके नहीं होता। जो राजकुमार अम्बारीके हाथीपर विराजमान होकर हजारो जनसमूहकी भीडमें बडे ठाटबाटसे जनताका स्वागत स्वीकारते हुए चले थे व थोडे ही वक्तके बाद राजसिंहासन पर विराजमान होनेवाले थे और जो सर्व साम्राज्याश्रित जनताको न्यायनीतिका शासन देनेके लिये हाथमें राजदंड धारण करनेवाले थे वही राजपुत्र संसारसे विरक्त होकर; सर्व साम्राज्य विभूतिका तृणवत् त्याग कर वनमें सिंहासन के बदले वृक्षतले जमीनपर बैठनेके वास्ते, हाथोंमें पिछीकमंडलुका धर्मशासक राजदंड धारण करने के लिये पैदल निकले। रत्नजडित नानाविध नक्षीसे सुसज्जित व सर्व शृंगार युक्त राजमंदिर का त्याग कर निसर्गनिर्मित सुंदर गिरिगुहामें, आत्मध्यानमें अपने मनको तल्लीन कर, इस मर्त्यलोककी नारी के बदले मुक्तिसुंदरी की अपेक्षा करते रहेंगे, इस ध्येय पूर्तीके लिए अब वह कर्मशत्रुका घोर उपसर्ग सहन करेंगे, गुप्तिसमिति आदि प्रबल सेनाबलसे सामना करेंगे व अन्तमे उनको पराजित कर मुक्तिवधू की वरमाला आनंदसे धारण करेंगे एक क्षणमात्रमे विचारका परिवर्तन हो गया। यह सब काललब्धिका ही प्रभाव है। अस्तु।

वंधुद्वय वनमें निकले तव सारी जनता शोक करने लगी। आकाशमें उज्ज्वल प्रकाशसे चमकता हुआ पौर्णिमाका चंद्रमा राहु-ग्रस्त होनेपर पृथ्वीतलपर गहरा अंधकार फैलता है, उसीप्रकार सिद्धार्थनगरी की अवस्था हुई। मातापिता की स्थिति अवर्णनीय विचित्र हुई। उनके दुःखका वर्णन कौन कर सकता है? तरुण, सुंदर व राजनीति धुरंधर राजकुंवर, सिद्धार्थनगरीके भावी राजा कुलभूषण का अपने कनिष्ठ भ्राता देशभूषण सहित दीक्षार्थ वनमें जाना सारी जनताका हृदय विदीर्ण करता था। जनताके रोकनेपर भी बंधुद्वय न रुके तव नगरनिवासिनी कुछ महिलाएं विमलाराणी पुत्रवियोग के दुःखसे बेशुद्ध हुई थी वहा गई, व शीतलोपचारसे सावधान कर बोली, रानीसाहव, आप यहा बैठी रहोगी, तो पुत्रोंको कोन लौटावेगा? वह जंगलकी तरफ दूर गये है। हमारा सभी का प्रयत्न असफल हुआ। अव आपके बिना अन्य किसीसे उनको समझाकर वापिस लानेका सामर्थ्य नहीं। चलो! उठो! शीघ्र चलो!!

रानी को थोडासा धीर आया व शोक करते हुए पुत्रोंके पास दौडी और "कहने लगी,"

गजल

वनमे जाओ नहीं जानके सितारे मेरे।
यति तुम होओ नहीं जानके सितारे मेरे।
तरुण हो प्रपंचसौख्य लश भी मालूम नहीं।
कुछ दिन राज्य करो जानके सितारे मेरे! ॥१॥
विकसित नव कुसुम तनु तापसे तपातपके।
क्यों सुकाते हो फिजुल जानके सितारे मेरे! ॥२॥

असार न संसार पुरा सार इसीमें है भरा।
त्यजते क्यों हो फिजुल ? जानके सितारे मेरे ! ॥३॥

" प्राणाधार प्यारे पुत्रो, तुमको वैराग्य होनेके कारण ऐसी वृद्धावस्था मे हमारे सिरपर प्रपंचभार छोडकर तुमने युवावस्थामें दीक्षा लेना यह बिलकुल नाजायज है। उषःकाल के पहिले ही दिन कभी नष्ट नहीं होता। वृक्ष वेलीके पहिले फलपुष्प सूख जाते हैं यह निसर्ग का नियम मै हरगीज नही मानती लेकिन वह (फलपुष्प) विवेकशून्य होते हैं। तुम सारासार विचार संपन्न मानव जातीमें पैदा हुए हो। मानव समाज मे ऐसा होगा तो वही शीघ्रातिशीघ्र नष्ट हो जायगा। चलो ! तुमको घरको ही वापिस लौटना पडेगा ! "

माता का शोकपूर्ण करुणाजनक भाषण सुन कुमारोंका हृदय दुःखित हुआ। परन्तु क्षणार्धमें शातता प्रस्थापित कर वह माताको समझाने लगे। " इस संसारमे मुख्यतया परमार्थ संपादन करना यही हर एक प्राणी का आद्य कर्तव्य है व यह उसके जीवन का मुख्य सार है। प्रपच मे मग्न होना, निज वंशविस्तार करना और मृत्तिकातुल्य द्रव्यराशि कमाना यह अपने आयुष्य में अत्यंत क्षुद्र कार्य है जो हम करना नहीं चाहते। माताजी,

दोहा

वृद्धि वंशकी करत है पशु वनमें; नर नाही।
नरभव मिलना कठिन है, व्यर्थ गमाना नाहीं ॥

और कहते है—

दोहा

शायद चिंतामणि मिलें, प्राप्त न नरतनु होय ।
सहज मिलें, सार्थक करो ! भवभवमें दुख होय ! ॥

" इसलिये सांसारिक कार्य की अपेक्षा मुक्तिसाधन करना अधिक श्रेष्ठ एवं आवश्यक है । क्यों कि मुक्ति इसी भवमें मिलती है । इसके प्राप्त्यर्थ स्त्रीपुत्रादिक का मोह छोडना चाहिये । इस संसार में स्त्री ही सबसे दुःखका कारण व मुक्तिसुख में बाधक है । इसका मोह छोडनेसे छूट नहीं सकता ।

दोहा

स्त्री संसृतिका पाश है, चारों गतिका मूल ।
स्त्री करके फिर मुक्तिकी वांछा करना भूल ॥

" अतः माताजी, स्त्री करके प्रपंच में पडने के लिये अब हमको मत कहो । शुभ कार्य शीघ्रातिशीघ्र करने चाहिये । तारुण्यावस्था में शक्ति, निकोप प्रकृती व शरीरस्वास्थ्य रहता है । इसलिये धर्मसाधन सुगमतासे होता है ।

यावत्स्वस्थोऽस्त्ययं देहो, यावन्मृत्युश्च दूरतः ।
तावादात्महितं कुर्याः प्राणान्ते किं करिष्यसि ?॥

" नीतिकारों की यह वाणी बिलकुल सत्य है । मृत्यु किसीका ताबेदार नहीं । वह किस वक्त कैसे स्वरूप में आयगा व क्या करेगा इसका कुछ भरोसा नहीं । इसलिये नीतिकारके वाणीका आज ही हमें अवलंब करना चाहिये । आत्महित के लिये विलंब क्या कामका ?

' अर्धमृतकसम बूढापनो । कैसे रूप लखे अपनो '

" माताजी आपही विचार कीजिये, अर्धमृतकसम अवस्थामें आत्महितकी प्राप्ति कैसी हो सकेगी ? हमें विषयोंसे पूर्ण तिरस्कार प्राप्त हुआ है। हमारी वैराग्यभावना पूर्ण प्रज्वलित है जिसमें राज्यैश्वर्य स्त्री-पुत्रादिका मोह भस्म हो जायगा तो अन्य कोनसी शेष वस्तु हमारे दिलको आकर्षित कर सकती है ?

दोहा

तपोभ्रष्ट होते हैं जो नृपवैभवका मोह।
धरते फिर होगा नही साधुभेषमें नेह॥

और,

दोहा.

जाने जो शाश्वत नहीं, जग में कोई चीज।
सुसाधु झट बन जायगा. जो शिवसुखका बीज॥

" तस्मात् आप शीघ्र वापिस लौट जाइये। हमें आत्मकल्याणके मार्गसे दूर करने का अब प्रयत्न मत कीजिये। "

इतना कहकर राजपुत्र आगे चले; किंतु विमला राणी का शोक अधिक बढ गया। वह उनके पीछे दोडने लगी। प्रपंच मोहसे माताकी शक्ति नष्ट हुईसी जान उसको समझानेके लिये बंधुद्वयने नगरनारियोंसे प्रार्थना की। धर्मनिष्ठ आर्यमहिलाओने रानी को बहुत कुछ समझाया। उपदेश की दो बातें कही परंतु मातृहृदय शांत नहीं हुआ। पुत्रोंको समझाने के बदले मुझे ही समझानेका यह प्रयत्न कर रही है इसका रानी को बहुत दुःख हुआ। वह नाराज होकर उनसे कहने लगी:—

पद.

(राग—आसावरी, त्रिताल.)

सुतविरहाग्नी मैं नहिं सहती ।
जीवित पलभर मैं नहिं रहती ॥ ध्रु. ॥
प्राणाधार बुलाय मिला दो । प्राणदान, विनती मुझको दो ।
प्रीति न उनपरसे हटती ॥ १ ॥

" बाइयो, पुत्रोंने दीक्षा धारण करने के बाद हमारा इस संसारमे क्या रहा ? उनके ही आधारपर हमारा जीवन है । वह हमारे जीवन की प्राणज्योति है । वह नष्ट होनेके बाद हमारा जीवित कहांतक रहेगा ?

' नहि वंध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम् । '

" बाइयो, तुम वंध्या नहीं हो । तुमको भी पुत्र है । अपत्यप्रेम कितना जबरदस्त रहता है यह तुम जान सकती हो । पुत्रप्रेम के सामने हर एक माता पर्वतप्राय घोर प्राणसंकट को भी न कुछ समझती है । पशुपक्षीतक प्राणी इस पुत्रके मोहपाशसे बद्ध हुए दीखते हैं । अपने बच्चेके स्मरणमात्रसे गौ की क्षुधा हरण होती है । गौ चारा खाने के लिये जंगल में जाती है, परंतु उसका सारा लक्ष अपने बछडेकी तरफ रहता है । यदि शामके वक्त बच्चा नजर नहीं आया तो वह भ्रमिष्टसरीखी जोरशोरसे चिल्लाती है । पशुओंकी भी यह बात तो फिर मैं मनुष्य हूं । क्यों ? अब तुम स्तब्ध क्यों हुई ? बोलती क्यों नहीं ? "

विमला राणीके दुःखोद्गारसे स्त्रियां बहुत दुःखित हुईं; किंतु दुःख करने का वह अवसर नहीं था । राणीको किसी न किसी

पकार धीर देना उस वक्त अत्यंत जरूर था। इस लिये वह उसको समझाने लगीं, " देवी, माता का बालकपर अनुपम प्रेम होता है। बालक माताकी जीवनज्योति है; वही उसीका आनंद-सागर है और उसके संसारका केवल सार है। इस संसारमें ' दंपत्योरिह लभ्यते सुकृततः संसारसारः सुतः ' यह तत्त्व हम भले प्रकार जानती हैं। परंतुः—

श्लोक.

युवा निजादेशनिवेशितश्रीः।
स्वर्ग प्रभुः प्राप्तपदप्रतिष्ठः।
शिष्यः सुतो वात्महितैकनिष्ठो।
न शिक्षणीयो न निवारणीयः॥

" अर्थात् शिष्य या पुत्र कोई भी हो, वह जब तरुण होता है, और अपना भार आप स्वयं सम्हालने लगता है उसवक्त न तो उसे डाटना योग्य है न रोकना योग्य है। माताका प्रेम पुत्रोंके सर्व जीवनपर अधिकार नहीं रख सकता। कुटुंबके बारेमें माताका अधिकार सर्व श्रेष्ठ है; लेकिन उसकी नीतीपर वह कदापि अधिकार नहीं चला सकती अथवा नियंत्रण भी नहीं रख सकती।

" आपके पुत्रोंने आत्मकल्याणके मार्गका अवलंबन किया है। जगमें प्रशंसनीय लोकोत्तर कार्य प्रारंभ करने के वास्ते यह वनमें जारहे हैं। अब यह असामान्य व्यक्ति बन जायेंगे। देखिये, यह मुस्कराती हुई मोक्षलक्ष्मी आपके पुत्रोंको आनंदसे आलिंगन देनेके लिये निजकरपल्लवसे कैसा इशारा कर रही है।

ऐसे मोक्षगामी, जगद्वन्द्य सत्पुत्र जिसकी कुक्षीमें आते है वही माता धन्य है। यदि हमको ऐसे पुत्र होते तो हम स्वयं अपने को धन्य समझती। जिसके महद्भाग्यका बलवत्तर उदय होता है उसको ही ऐसे सुपुत्रों की प्राप्ती होती है। आपसरीखी महद्भाग्यवती स्त्रिया जगमें विरल होतीं हैं। आपके पुत्रोंने जन्मका सार्थक किया व दिगंतरमें यशःसौरभ फैलाया है। अब यह अपनी लोकोत्तर चर्यासे अष्टकर्मका विध्वंस कर मोक्षवासी बन जायेंगे उसवक्त सारा जग प्रातःकाल के समय पूज्य भक्तिभावसे व आनंदसे इनके निर्मल गुणगान के साथ साथ— हे देवी! आप ऐसे सत्पुत्रोकी जन्मदात्री होनेसे—आपका भी नित्य स्तुतिस्तोत्र गाकर वह पुनीत बन जायगा।

पद।

(रागः--तिलंग एकताल)

धन्य जननि; मदनमोहन।

कुलभूषण पुत्र वीर। प्रसवती है सुगुणि देशभुषण ॥ध्रु॥

संसृतिसौख्य—मोहपाश।

तोड धार साधु भेष ॥

कर्म नष्ट, मुक्तिनाथ; यशवंत, लोकमें बने हैं पूर्ण ॥ १।

" देवी ऐसी महान् पुण्यात्माओंकी माता होकर आपको शोक करना अनुचित है। '**परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।**' इस संसारमें हर एक प्राणी जन्मता व मरता है किंतु अपने जन्मको सार्थक करनेवाले विरले ही होते है। आज यह अपने जन्मको उत्तम प्रकारसे सार्थक कर रहे हैं। राज्य करने में क्या रखा? मोक्षका राज्य शाश्वत है जिसे प्राप्त कर

विद्वान होते हुए मेरे दुःखनिवारणार्थ उपाय क्यों नही बताते ? क्या किसी को भी मुझपर दया नहीं आती ? अभागिनी, तेरा सौभाग्य अब पूर्ण नष्ट हो गया है, दुर्दैवका ही जिधर देखते है उधर साम्राज्य देखनेमे आता है; इसवक्त इस संकटसे तेरा कोई भी छुटकारा नही करेगा !,,

इत्यादि दुःखपूर्ण अंतःकरणमे शोक करती हुई जमीनपर मूर्च्छित होकर गिर पडी। सर्व महिलाओको राणी पर अत्यत दया आई। ऐसी अवस्थामे राजकुमार अपना कृतनिश्चय स्थागित करेंगे तो अच्छा होगा इस आशासे वह करुणार्द्र दृष्टी से उनकी तरफ देखने लगी। उनकी यह हालत देख कुमार बोले,

अंजनीगीत.

पापीजन भवकारागृह में ।
मदांध बनते हैं विषयों में ।
नरभव पाया कैसा यह मैं ।
विचार नाहिं करते ! ॥ १ ॥

“ माताओ, यह संसार एक प्रकारका बडा कारागृह है। कामक्रोधादि महाशत्रु अज्ञानी प्राणियोंको गुलाम बनाकर अत्यंत जर्जर करते रहते हैं वह उनकी पुण्यकी तरफ किंचित भी प्रवृत्ति नहीं होने देते। बुद्धिमान प्राणी ऐसे अनर्थमय संसारमे कदापि मग्न नहीं होता। उसको जिधर उधर यही देखनेमें आता है:—

श्लोक.

वृक्षात् क्षीणफलांस्त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसाः।
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टं नृपं मन्त्रिणः।

पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनांतं मृगाः ।
सर्वः कार्यवशाज्जनोऽभिरमते तत्कस्य को वल्लभः ॥

" ऐसे महान् दुःखद संसारमें किसके आधारपर, कोनसे अक्षय सुख के आधारपर हम मग्न हो जाते ? तस्मात् हमने जो निश्चय किया है वह कदापि नही बदल सकता । इसमें तुम नाहक परेशान मत हो जाओ ! तकलीफ उठानेमें तुमको कदापि यश नहीं प्राप्त होगा ! चलो, वापिस जाओ !

बधुद्वय का निश्चय सुन विमला रानी भयभीत हुई और पुत्रमोहसे आगे दौडकर उनके सामने लेट गई व बोली,

गजल.

क्यों छोडके जाते हो मुझे जानके प्यारे । अय प्राणदुलारे ! ।
होता हैं गम कुछ रहम करो जानके प्यारे !अय प्राणदुलारे॥घृ॥
बहु दुःख भूख प्यास का है साधुभेषमें ।
हो जाओगे जर्जर जिससे जानके प्यारे ! ॥
मृदुल कुसुमकी न सेज मृदु मखमल की ।
सोओगे तो चुभ जायंगे भूकंकर प्यारे ! ॥ २ ॥
नहीं राजमहल, है गुहा, रहते हैं क्रूर पशु ।
फिर जानकी आशा न जरा जानके प्यारे ! ॥ ३ ॥

" अय पुत्रों, मेरा आखिर का कहना जरा सुनलो ! तुम्हारे प्रेमवश विवेकहीन, पागल बनी हुई यह तुम्हारी माता अन्तिम दो शब्द कहना चाहती है इधर जरा ध्यान दो ! तुमने जो निश्चय किया है, तुम जिस मार्गका अवलम्बन करना चाहते हो वह उत्तम नीतिमार्ग है क्यों कि संयम संसारका उच्छेद करता है । परंतु तुम अभी अनजान हो । दिगंबरी अवस्थाके कठिन दुःखकी

तुमको अभी तक कल्पना नहीं है । तारुण्यावस्था में इंद्रियों को जीतना अत्यंत कठिन है । आजतक तुम्हें हरएक प्रकारकी उत्तमोत्तम चीजें चाहे जिसवक्त मिलती थीं परंतु अब भिक्षावृत्तीपर तुम कैसे रह सकोगे ! ग्रीष्मऋतु में सुवर्णपात्रोमें ठंडा पानी पीते थे, अब निःसत्व प्रासुक पानी पीना पडेगा जिससे तृषा शांत नहीं होगी । फिर तृषाका दुःख असह्य होगा । ग्रीष्मऋतुके तीव्र धूपमें तुम पर्वतके शिखरपर ध्यान धारण करोगे तो तुम्हारे स्वास्थ्य की रक्षा किस प्रकार होसकती है । वर्षाकालमे नदी किनारे ध्यानस्थ होजाओगे तो नदीके प्रवाहमे बहकर डूब जाओगे तब मगरमत्स्य के भक्ष्य बनकर तुम्हारे शरीरका विनाश हो जायगा । हेमंतऋतु के कडक ठंडीसे तुम्हारे देहमें थरथराहट पैदा होगी तब तुम्हें ओढनेके लिये गरम कपडे कौन देगा ? राजमहाल के बदले निर्जन गिरिगुफामें दिन बिताना मुष्किल होगा । वहां व्याघ्रसिंहादि क्रूर पशु क्षणार्ध मे तुमको भक्षण करेंगे उस समय तुम्हारा रक्षण कौन करेगा ? पुत्रों, ऐसा हठ छोड दो ! कुछ दिन राज्यैश्वर्यकी-सौख्यादिका अनुभव लेकर वृद्धावस्थामें दीक्षा धारण करो ! मेरा कहना मानो व घरको चलो " ।

" तुम भी ज्ञानी हो । क्षणमात्र में तुम अपने ज्ञानबलसे अष्ट कर्मोका विध्वंस कर मोक्षपद प्राप्त कर सकते हो । भरत-चक्रवर्तिजी गृहस्थावस्थामें राज्य कारोबार देखते हुए वैराग्यमय भावनासे ध्यान करते थे अतः कर्म क्षय जानेसे दीक्षाके समय शरीर

परसे वस्त्राभूषण उतारते ही उनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। तुम भी उनका अनुकरण करो! इस तारुण्यावस्थाके सदुपयोगार्थ राज्यारूढ होजाओ व हमको आनंदित करो! राजमहलमे ध्यानाध्ययन करनेमे चित्त स्थिर न होता हो तो उपवन के सुंदर भवन मे उनका अभ्यास करो? इससे स्वार्थ सधकर परमार्थ भी सध सकता है। हठ न करो व मेरे साथ चलो!"

माताके भाषणसे राजपुत्र थोडेसे दुःखित हुए। उनके दिलमे चलविचलता उत्पन्न हुई लेकिन ठीक विवेक करनेपर क्षणमात्रमे अपने निश्चित नीतिपथपर आये। मातासे वह कहने लगे, 'माताजी, हमारे लिये चिंता एव शोक करना छोड दो। हजारो बाणोकी वर्षा सहन करनेवाले, महान् योद्धाओको निजभुजबलसे घायल करनेवाले, प्रत्यक्ष इन्द्रको भी हार न जानेवाले हम शूरवीर सिंहव्याघ्रादिको कभी नहीं डरेगे! जन्ममृत्युका ही सबसे अधिकतर नितात दुःख होता है इसलिये कृतात को हम तुरत जमीनदोस्त करना चाहते हैं। मृत्युका नाश होनेके बाद जन्मका अस्तित्व झट नष्ट होजाता है इसका विध्वस करनेके लिये दिगम्बरत्व ही एक दिव्य शस्त्र है।"

"माताजी, ज्ञानी मनुष्य क्षणमात्रमे कर्मकी निर्जरा कर सकता है यह बात निःसंशय सत्य है। लेकिन यह ससार अनंत दुःखसे भरा हुआ है ऐसा समझनेवाला कोनसा ज्ञानी पुरुष उसके फंदेमे फंसगा? हाथमे प्रकाश होते हुए ऐसा कोनसा बुद्धिमान पुरुष होगा जो सामने नजर आते हुए गहरे खड्डेमे गिरेगा!"

" भरतजी एक महात्मा थे। प्रपंच करते हुए उनका ज्ञान अत्यंत तीव्र था, हमको प्रपंचका ज्ञान भी नहीं हुआ किंतु उसके पहलेही हमारा कामविकार अत्यंत तीव्र हुआ। ९६ हजार राणियां होते हुए भी भरतजी कामके गुलाम नहीं बने थे; और हम व्याहके पहिले ही उसके गुलाम बनकर अविचारसे भगिनी पर मोहित हो मदोन्मत्त बन गये। इतना उनमें और हमारे मे जमीन अस्मान का अंतर! माताजी, सुखोपभोग भोगते हुए हमको ध्यान की कदापि सिद्धि नहीं हो सकेगी। कामके हम दास है इसलिए यह दासत्व नष्ट करने के लिये ही हम दिगम्बरी दीक्षा लेगे। "

" राजमहल मे अथवा उपवनके सुंदर महलोमे ध्यान करना बिलकुल असंभवनीय है। सुखोपभोग के लिये ध्यान कदापि नहीं करना चाहिये। प्रापंचिक सुखसाधनार्थ उनमे तल्लीन हो जाना अत्यंत निंद्य है। ऐहिक सुख के वास्ते ध्यान करनेवाले झूठे साधु कहलाते है। वह अपने आत्माका कल्याण कदापि नहीं कर सकते। कहा भी है:—

श्लोक

अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया।
तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते॥
भवान् पुनर्जन्मजराजिहासया।
त्रयीं प्रवृत्तिं शमधीरवारुणत्॥

" पुत्र, संपत्ति व पारलौकिक सुख इन सबकी, अथवा एकैककी तृष्णा कर बहुतसे तपस्वी तप करते हैं किंतु वह सब

झूंठे हैं। हे भगवन्, आप पुनर्जन्मादि का नाश करनें के हेतुसे तप करते हैं इसलिये आप ही तीनों प्रवृत्तियों को रोकने वाले, शांतिसागर, सच्चे वीतराग हैं।"

" शीत, गरमी इत्यादी उपसर्ग को हम तुच्छ समझते हैं। जो सच्चा साधु होता है वह बडी शांतता से उपसर्ग सहन करता है। उपसर्ग के विना तपकी परीक्षा नही होती। आत्मा अविनाशी व अमर है। किसी भी शस्त्रसे या उल्कापातसे भी इसका विनाश नहीं होता, इसप्रकार समझनेवाला यति उपस्थित उपसर्गों को सहते हुए लेशमात्र भी परिणामो मे विकृति उत्पन्न नहीं होने देता। वह मन वचन कायाको अपने आधीन कर, निरिच्छ, निःस्पृह व सासारिक सुखोपभोगसे निराश होकर शांततापूर्वक तपः साधन करता है। ऐसे योगियों को मिष्टान्न भक्षण करने की अथवा मृदु शय्यापर सोनेकी स्वप्नमे भी कल्पना नहीं आती। निसर्गनिर्मित अथवा इतर पूर्वजात शत्रूसे होनेवाले उपसर्गों को सहन करते समय आनंदसे व निर्विकार भावसे ध्यानमें इतने तल्लीन होते हैं कि उनको बाहरी दुःखका तनिक भी ज्ञान नहि होता। वह निर्भय होकर हर्षसे आत्मासिद्धी के लिये चाहे जिस स्थानपर ध्यान धारण कर बैठते हैं। क्यों कि,

श्लोक

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शांतिश्चिरं गेहिनी॥
सत्यं सुनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनःसयमः।

शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं ।
एते यस्य कुटुंबिनो वद सखे ! कस्माद्भयं योगिनः ॥

"माताजी यही यतिका सच्चा लक्षण है । उक्त गुण धारण करनेवाले यतीको किसका डर है ? ऐसे मुनिराज का आत्मतेज बढता है जिसके प्रभावसे शासनदेवता तच्चरणोंके दास बनकर उपस्थित उपसर्गोंका भी निवारण करते हैं । सिंहव्याघ्रादि क्रूर पशु परस्परका वैरभाव भूलकर मुनिचरणदर्शनकी तीव्र लालसासे उनके पास बैठकर उनका सर्वथैव रक्षण करते हैं ।

'झाणज्झयणं मुक्खो जइधम्मे तं विणा तहा सो वि ।

अर्थात् यतिधर्ममें ध्यान व अध्ययन यह दो मुख्य विधी है । इसी ध्यानाध्ययन से कामक्रोधादि शत्रु निर्बल होते हैं तब आत्मतेज बढता है; और कुछ काल के बाद इनका पूर्ण क्षय होकर आत्मा केवल ज्ञानका अधिपति बनता है व अन्तमे सिद्धपद पाता है । यही सिद्धावस्था धारण करने का हमने पूर्ण निश्चय किया है । माताजी, हमें दृढ आत्मविश्वास है कि हमारेमें कर्म नष्ट करने की शक्ति होनेसे थोडे ही दिन में हम भी वह अवस्था निर्भयतापूर्वक प्राप्त करेंगे । आप डरते क्यों हो ? हम प्रचंड बलधारी सिंहिनी के सच्चे शूर बच्चे है । "

इस प्रकार अपनी माता को समझाकर,

दोहा.

राज्य छोड वन में गये दैगंबर यतिभेष ॥
धारण कर निज रूप में सुरत हुए सुगुणेश ॥

षष्ठ परिच्छेद.

रामचंद्रजी के द्वारा मुनियोंका उपसर्ग निवारण.

कालब्धि कुछ अचिंत्य है। नाना विलासमें निमग्न वे सुकुमार राजकुमार थोडेसे निमित्तको पातेही अशाश्वत राज्यवैभव तृणवत् छोडकर महातपोनिधि मुनि बन गये और नाना प्रकारके परीषह सहन करते हुए उग्र तप करने लगे।

गृहस्थावस्थामें मनुष्य मृदु शय्यापर सोता है। जरासा कंकर चुब जाय तो तकलीफ मालूम होती है; शीत की बाधा न हो जाय इस लिये मोटी रजाईसे अपना शरीर ढंक लेता है; गरमी में मलमलका पतला कपडा पेहेनता है; मिष्टान्न के सिवाय दूसरा भोजन अच्छा नहीं लगता और जरासी देरी हुई तो उसके स्वास्थ्यमें विकार उत्पन्न होजाता है। लेकिन वही गृहस्थ काल लब्धिके प्राप्ति हो जानेपर थोडासा निमित्त पातेही जब प्रपंच मुक्त होता है, तब मुनि अवस्थामे कंकरीली जमीनपर सोता है, उसवक्त न उसको कंकरे चुबते है, न शीतगरमी की बाधा होती है, न भोजनपर आसक्ति रहती है। दो दो दिन अन्न नहीं मिला तो भी उसकी शक्ति घटती नहीं अथवा स्वास्थ्य भी खराब होता नहीं। यह सब आत्मानंदका प्रभाव है। सबसे आत्मानद श्रेष्ठ है। इसके प्राप्त्यर्थ आशाको दबाना चाहिये। **आशा सुखकी घातिनी,**

फैली हुई थीं। जिधर उधर पानी होनेसे हरित तृणांकुरयुक्त प्रदेश दीखता था। सारांश यह स्थान अत्यंत रमणीय होनेसे मुनिद्वयने ध्यानाभ्यास के लिये पसंद किया था।

" **श्रेयांसि बहुविघ्नानीत्येतन्न लघुना भवेत्** " उत्तम कार्यों में हमेशा विघ्न आते ही रहते हैं। श्रीमत्परमपूज्य वादीभसिंहाचार्यजी की उक्ति अणुमात्र भी झूंठ नहीं है। क्यों कि इस पहाडी जगल के बीच एक पर्वत शिखरपर उन दोनों भाइयोने ध्यानाभ्यास करना आरम्भ किया था; किंतु उनकी समाधि चिरकालतक निर्विघ्न नहीं चली। पूर्व-जन्मका वैरी, अग्निप्रभनामक एक दुष्ट असुर गतजन्मका वैरस्मरण कर उनकी तपश्चर्यामे विघ्न करने लगा। अनेक भयंकर उपसर्ग होनेपर भी वह चलायमान नहीं हुए। वह वज्रर्षभनाराचसंहननधारी होनेसे जगत्मे प्रत्यक्ष भयंकर प्रलय या उल्कापात भी होता तो भी तपसे कदापि नहीं विचलित होते; फिर इस उपसर्ग की क्या बात? वह साक्षात् मोक्ष की मूर्ति ही होकर बैठे थे।

सज्जनों, दोनों मुनि निजात्माको अजरामर समझकर शुक्लध्यान मे तल्लीन हुए थे। परिणामोंमे विकृति न लाते हुए अत्यंत शात भावसे राक्षस का घोर उपसर्ग सहन करते थ। उन्होने देह का ममत्व छोड दिया था। अपने पूर्व-जन्मका [क्यो कि वह दुष्ट असुर पहिले जन्म में व्याध था, फिर पुरोहित, तत्पश्चात् अनुधर हुआ जो नीच कृत्य करनेके कारण राजपुत्रासे नित्यशः अपमानित होता था। उस अपमान का] बदला लेने के हेतुसे वह नये नये

इंगसे नाना भांति का व भयंकर भीतिप्रद रूप धारण कर मुनियोंको छलना था व उनका मेरुसमान अचल ध्यान भग्न करने का प्रयत्न करता था; लेकिन वह सब निष्फल हो गया। आखिर कर्म-संयोग से श्री रामचन्द्रजी अपनी प्यारी कांता सीता व कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण को साथ लेकर एक दिन वहां आये। उन्होंने अपने अनुपम सामर्थ्यसे निर्दय असुरको भगाकर मुनियोंका उपसर्ग दूर किया।

" महाराज " श्रेणिक खडे हो कर अत्यंत नम्रतासे बोले, रामचंद्रजी ऐसे जगलमें किस कारण से आये ! उन्होंने अयोध्या क्यों छोडी '

गणधर स्वामीने उत्तर दिया, " श्रेणिक तूने बहुत अच्छा प्रश्न किया। रामचंद्रजीने अयोध्या छोडनेका कारण मैं तुझे संक्षेप में कहता हूं, सुन। "

अयोध्याका राजा दशरथ अपनी चार रानियोंके साथ राज्य करता था। इन चार रानियोंसे रामचंद्र, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न ऐसे चार पुत्र हुए। जब यह बडे होगये तब अपनी वृद्धावस्था हुई जान मन से ज्येष्ठ व प्यारे पुत्र रामचंद्रजीको राज्य देनेका राजा दशरथजीने विचार किया; इस मुजब संसारकी असारता देख, दुःखदायी प्रपंच के फंदेसे छूटकर आत्मकल्याणार्थ दिगंबरी दीक्षा लेनेकी और रामचंद्रजी को राज्य देने की इच्छा दरबार में प्रगट की। दरबार ने बडे आनंदसे संमति दी व सारे नगर में यही घोषणा फैला दी। ' सर्व गुणसंपन्न

रामचन्द्रजी अपने राजा बनेंगे ! ' यह घोषणा सुन सारी नगरवासी जनता अत्यंत हर्षित हुई। राज्याभिषेक का सुमहूर्त निश्चित होते ही सारे शहर की शोभा की गई। बाहर गांव से राजा महाराजा भी आ गये। सर्वत्र आनंद ही आनंद छा रहा था; किंतु वह बादल,बिजली के समान थोडेही देरके बाद नष्ट हो गया। क्यों कि राजा दशरथ की प्यारी स्त्री कैकेयी अपने खास पुत्र [भरत] को राज्यपर बिठाना चाहती थी। झट वह दशरथ महाराज के पास दौडी व बोली "महाराज आपके युद्धमय मैंने सारथ्य किया था व अच्छी तरहसे आपको सहयोग दिया था जिससे आपको विजय प्राप्त होतेही मुझे सतोषसे दो वर दिये थे; वह मांगनेके लिये मैं आई हूं। अत: इसवक्त आप अपनी वचनपूर्ति कीजिये।"

दशरथ महाराज एकवचनी थे। उन्होंने चाहे जो वर मागने के लिये अपनी प्यारी पत्नी को आज्ञा दी।

कैकेयी बोली:—

पद.

(राग:—यमन—त्रिवट.)

मांगत मैं तुमको । सुगुणधर !॥
दो वर; दो मुझको प्रिय नरवर !॥ ध्रु. ॥
राज्य भरतको देकर, भेजो वर्ष चतुर्दश वनमें, रघुवर ॥१

" नाथ, सुनिये ? ' भरत को राज्यपर बिठाकर रामचंद्र को चौदा वर्ष वनमें भेज दो ! ' यही दो वर मैं मांगना चाहती हूं उसकी अब पूर्ति कीजिये ! क्यों कि राज्य देनेके बाद आप

इसका अच्छी तरह से दशरथ को ज्ञान हुआ; और उनका वैराग्य द्विगुणित बढ गया !

अपने पतिराज इसप्रकार विचारमें मग्न हुए देख कैकेयी फिर जोरसे बोली, "महाराज, आप चुप क्यों बैठे हो? मेरा वचन पूर्ण किये बिना आप कदापि दीक्षा नहीं ले सकोगे ! "

दशरथ महाराज सचिंत मुग्धता धारण कर बैठे थे और कैकेयी की इच्छित वरप्राप्त्यर्थ प्रार्थना की ललकारी बडी जोरसे चली थी इतनेमें रामचंद्रजी आये। कुछ कारण के लिये कैकेयी अपने पिताजीसे झगडा कर रही है जिससे वह चिंतामग्न व म्लानमुखी होगये हैं। यह देख रामचद्र जी बोलेः—

पद.

(चालः—नाचत ना गगनांत)

प्रणाम पदयुगमें। पिताजी ! ॥
करत विनयसे मैं। पिताजी ! ॥ धृ. ॥
चिंतातुर क्यों दीखत मुझको, कहिये विनति तुम्हें ॥१॥
चिंतानल झट शांत करूंगा निश्चित मैं क्षणमें ॥ २ ॥

" महाराज मै आपका शूर पुत्र हूं। चाहे जिसवक्त आपकी इच्छा पूर्ण करनेकी मेरे में धमक है। आपकी हरएक प्रकारकी सेवा करने के लिये मैं तैयार हूं। जो इच्छा हो, आप मुझे आज्ञा करें, मैं पूर्ण करने मे समर्थ हूं। अपने विनयशील पुत्रका विनयभरित वचन सुन दशरथ दुःखित स्वरसे बोलेः—

दिंडी.

मत्सरी स्त्री वरपुर्ति चाहती है।
भरत को दे दो राज्य, बोलती है॥

विक्राल देह, कठमें रक्तमय शीर्षोंकी रक्तमाला, भीतिप्रद विरूप कांति व लफलफती हुई आरक्त जिव्हा आदि देखकर बडे बडे शूर व धैर्यवान् मनुष्य डरते हैं। उपद्रव में कभी पत्थरों की वर्षा करता है व कभी अग्नि बरसाता है। इसप्रकार असुर की लीलाका कहांतक वर्णन करें। धैर्य धारण कर वहा रहना अत्यंत कठिन होनेसे कहीं निर्भय स्थान मिलेगा इस आशासे हम भाग रहे हैं।"

लोगों के यह दीन वचन सुन रामचंद्रजी के दिलमें दया पैदा हुई और उनको धीरज बधाया। तत्पश्चात् आजकी रातमें उस दुष्ट राक्षसका नाश करनेका चग बांधकर व हाथमें धनुष्यबाण उठाकर लक्ष्मणसीतासहित वंशस्थलगिरी तरफ जानेके लिये सिद्ध हुए।

सीता बोली, "महाराज, थोडेही देरके बाद अब अंधेरी रात हो जायगी। ठीक तौरसे आपके रास्ता मालूम नहीं। ऐसे दुर्गम अपरिचित पहाडमेंसे जाना अत्यंत मुश्किल हो जायगा। आप चार महावीर्यशाली हो परंतु योग्य विचार करनेके पहले साहस करना क्षत्रियोंको उचित नहीं। कल सबेरे चाहे जिसवक्त आप चले जाईये!"

लोक भी कहने लगे "महाराज आप दोनों भाई सुकुमार दीखते हैं। हाथमें यह अबला है। अंधेरी रात है। दानव बडा दुष्ट व क्रूर है। आप लाइजोंके कहनेपर कुछ ध्यान दीजिये व हमारे लिये अपने व बाईजीके प्राण संकटमें न डालिये।"

रामचंद्रजीको हंसी आई। दीनजनोंका एवंच श्रीमत्पूज्य मुनियोंका उपसर्ग निवारण करनेकी यह अमूल्य प्राप्त संधि क्षत्रियोंको व्यर्थ न गंवाना चाहिये, सत्यकाही सदा विजय होती है; हम क्षत्रिय है: कृतांत को भी हम भगा देंगे इतनी हमारी शक्ति है; तुझे डरनेका कुछ कारण नहीं। इत्यादि वाक्योंसे सीता माईको उन्होंने धीर बंधाया, और विरोध करनेवाले दीन लोकोंको अपने पराक्रमका विश्वास दिलाया। तत्पश्चात् वह पहाडकी तरफ रवाना हुए।

आगे रामचंद्र बीचमें सीता व पीछे लक्ष्मण इस तरह वह तीनों जन मिलकर गिरीका दुस्तर मार्ग आक्रमण करने लगे। मार्गके बीच आनेवाले क्रूर श्वापदोंका उपसर्ग निवारण करते हुए वह शिखरपर आ पहुंचे। वहां दो महामुनि ध्यानस्थ खडे हुए इनके नजर आये। मुनियोंको भक्तिभावसे तीन प्रदक्षिणा देकर त्रिवार प्रणाम किया व हाथमें वीणा लेकर मधुर स्वरसे श्री जिनेश्वरका नामस्मरण करने लगे।

पद.

(भैरवी-त्रिताल.)

स्मर चिर प्यारे जिनवरं ॥ ध्रु ॥

पंचाक्षरका मंत्र शुद्ध जप कल्मषदुःखहरं ॥ १ ॥

तीर्थंकरपद प्राप्त होत है, शिवपद सौख्यकरं ॥ २ ॥

रामचंद्रजी गाते थे, लक्ष्मण वीणा वजाते थे व सीता भक्तिभावसे नृत्य करती थी। इस प्रकार उनके भक्तिगानमें सूर्यास्त हो गया। जिधर उधर अंधेरा फैल गया इतने मे दारुण

संपन्न मंगलमय दीखने लगा। राक्षस की भीकर गर्जनासे छुपे हुए सिंहव्याघ्रादि क्रूर पशु (परस्पर का वैरभाव भूलकर) मुनि-दर्शनके लिये निकट आबैठे । केवली भगवान के अतिशय को देख असंख्य लोक दंग हो गये। जय जयध्वनीसे आकाश गूंज उठा। वंशस्थल राजा आया। उसने मुनियोंका दर्शन किया। फिर रामचंद्रजीसे मिला व उनका बहुत कुछ आदर सत्कार किया। इस प्रदेश को सातिशय क्षेत्र समझ कर रामचंद्रजी व राजाने बहोतसे सुवर्णमय जिनालय बंधवाये।

एकत्रित भव्य जीवोको उपदेश देनेके लिये रामचंद्रजी ने मुनियोको बडे विनयसे उनके चरणकमलो मे नमस्कार कर प्रश्न किया " भगवन्, आपने किस कारणसे ऐसी युवावस्थामे दीक्षा धारण की व इस दुष्ट राक्षसने किस कारणसे आपको उप-सर्ग दिया।

रामचंद्र जी के प्रश्नसे अन्यजन व देवो को मुनियोंका चरित्र सुननेकी अत्यंत आतुरता उत्पन्न हुई जो भगवानने अपना पूर्वभव वर्णन कर पूर्ण किया।

षष्ठ परिच्छेद समाप्त.

—x—x—

अंतमें घरको वापिस लौटते समय सभीने श्रीमत्परमपूज्य महावीर भगवानकी अत्यंत भक्तीसे स्तुति की।

पद.

(मालकौंसः—त्रिताल.)

हम वंदत वरि जिनेश्वर ॥ ध्रु० ॥
तारणतरणशक्तिधर तुम हो दुःखद संसृतिभीतिहरं ॥ १
देवनके तुम महादेव हो अनंत अक्षयसौख्यकरं ॥ २ ॥
नाथ ! 'बालसुत' चाहत दर्शन नित दो नयनानंदधरं ॥ ३

' जैनं जयतु दर्शनं !! '